एवम् इन्द्रजित्

प्रतिभा अग्रवाल

एवम्-इन्द्रजित्

अग्रवाल

891.442
Sa 73 E; 1

H
891.442
Sa 73 E

'राजकमल' का नाटक-साहित्य

लहरों के राजहंस (राज संस्करण)	मोहन राकेश	६·००
मृच्छकटिक पु(स्तकालय संस्करण)	अनु० मोहन राकेश	५·५०
वाह रे मैं वाह !	कन्हैयालाल मा० मुंशी	६·५०
सात रंग एकांकी	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल	४·००
रक्त कमल	,, ,,	४.००
एकांकी श्री	सं० राजेन्द्र भनोत 'शील'	४·००
कॉफ़ी हाउस वाली लड़की	डॉ० सत्यप्रकाश संगर	४·००
दामाद का चुनाव	,, ,,	५·५०
रुपया तुम्हें खा गया	भगवतीचरण वर्मा	३·००
अधूरी मूर्ति	गोविन्दवल्लभ पन्त	४·००
जौहर की ज्योति	डॉ० रामकुमार वर्मा	४·००
नगर वधू	डॉ० प्रतिभा अग्रवाल	४·५०

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६ पटना-६

एवम् इन्द्रजित्

अनामिका मंचमाला—२

श्री बादल सरकार के मूल बँगला
नाटक का डॉ० प्रतिभा अग्रवाल
द्वारा प्रस्तुत अनुवाद

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली : पटना

प्रतिभा अग्रवाल

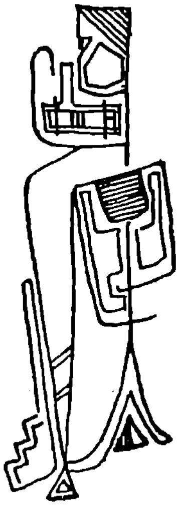

एवम् इन्द्रजित्

प्रस्तुत पुस्तक के किसी भी अंश को रेडियो, टेलीविज़न या मंच पर प्रदर्शित करने या किसी भी भाषा में अनुवाद करने अथवा प्रस्तुतीकरण के लिए रूपान्तरकार की अनुमति लेना अनिवार्य है।

Library IIAS, Shimla
H 891.442 Sa 73 E: 1
00054671

H
891.442
Sa 73 E

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 54671
Date 8.7.76

16/12

© डॉ० प्रतिभा अग्रवाल

प्रथम संस्करण : १६६६
मूल्य ६.००
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८, फ़ैज बाज़ार, दिल्ली-६
मुद्रक : नवीन प्रेस, दिल्ली-६
सज्जा : श्री सुखदेव दुग्गल

'एवम् इन्द्रजित्' और अनुवादक का वक्तव्य

वर्तमान दशक में भारतवर्ष में लिखे गए नाटकों में 'एवम् इन्द्रजित्' (बँगला) का विशिष्ट स्थान है। पिछले दिनों मराठी, गुजराती, कन्नड़, हिन्दी, बँगला, पंजावी आदि भाषाओं के नाटकों में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है और इसके परिणामस्वरूप 'तुगलग', 'सुनो जनमेजय', 'कस्तूरी मृग', 'शान्तता ! कोर्ट चालू आहे', 'सापउतारा', 'कांचनरंग', 'रजनीगंधा', 'एवम् इन्द्रजित्', 'छलावा' आदि जैसे अनेक नाटक अपनी भाषा के सीमित क्षेत्र की सीमा का अतिक्रमण करके अखिल भारतीय स्तर पर पहुँच गये हैं। 'एवम् इन्द्रजित्' का अनुवाद हिन्दी, गुजराती और कन्नड़ में हो चुका है और अंग्रेज़ी में होने की वात है। 'एवम् इन्द्रजित्' की इस लोकप्रियता का कारण उसके कथ्य एवं शैली दोनों का वैशिष्ट्य है। आज के युवक—और सम्भवतः हर युग के युवक—की महत्त्वाकांक्षा और परवर्ती कुण्ठा एवं निराशा का बड़ा ही यथार्थ चित्रण इस नाटक में किया गया है, किन्तु उससे भी बड़ी वात इस सत्य को स्वीकार करने की है कि मृत्यु का वरण समस्या का समाधान नहीं है। यह जानते हुए भी कि हमारे पास आस्था, विश्वास, प्रेम जैसा कोई भी जीने का सम्बल नहीं है, हमें जीना है; यह ज्ञान होते हुए भी कि यात्रा के पूरी होने पर कोई देवलोग सम्मुख नहीं होगा, हमें चलते चलना है क्योंकि हमारे सामने पथ है। तीर्थ नहीं तीर्थ-यात्रा ही हमारा इष्ट हो तो भी क्या आपत्ति है ? जीवन को हम चाहे रीझकर स्वीकार करें चाहे खीझकर, उसे स्वीकार करना ही होगा। वैसे नाट्यकार बादल सरकार स्वयं इस नाटक को आशावादी या निराशावादी किसी

भी स्वर के साथ समाप्त करने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है कि जीवन में न आशा का प्रश्न है और न निराशा का, हमारे सामने जीवन है, हमें जीना है, मानसी की प्रेरणा और इन्द्र का जीवित रहने का स्वीकार ऐसा ही आवेगरहित स्वीकार है, सारी आशाओं-आकांक्षाओं, विषमताओं-विवशताओं से लड़-जूझकर थके हुए उस व्यक्ति का स्वीकार है जो जीवन का कोई अर्थ नहीं ढूंढ पाता है, फिर भी सहज ही मरने का निर्णय नहीं कर पाता क्योंकि वह भी उतना ही तथ्यहीन लगता है। लेखक की इस व्याख्या और स्पष्टीकरण से सहमत हुआ जा सकता है, बहुत दूर तक मैं हूँ भी। किन्तु ऐसा लगता है कि नाटक के अन्त को सर्वथा आवेगरहित बनाने की चेष्टा करने के बावजूद, उसमें कहीं हल्का-सा, संकेत आशा का आ ही गया है। तीर्थ-पथ पर तीर्थयात्रा करने की आकांक्षा रखने वाला नाटक का कवि, अवश्य ही अपने तीर्थ-पथ को मंगलमय मानता होगा, तीर्थ तक पहुँच पाने की सम्भावना के प्रति अत्यन्त शंकालु होते हुए भी वह 'मुक्त-हृदय निर्द्वन्द्व भाव से उसी पथ पर चलने के अपने प्रारम्भिक निर्णय पर अटल रहना चाहता है।

तीर्थ नहीं है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं है केवल पथ ही
इसी तीर्थ-पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

—ये पंक्तियाँ कहीं बहुत दूर ही सही, इतनी दूर जहाँ हम शायद पहुँच ही न सकेंगे, प्रकाश की एक क्षीण रेखा का आभास देती हैं। अवश्य ही यह बहुत उल्लसित होने की स्थिति नहीं भी हो सकती है किन्तु सर्वथा निराश होकर टूट जाने की भी नहीं। पथ है इसलिए चलना है, मृत्यु का वरण करने की बात भूलकर जीवन को स्वीकार करना है, इसे बादल सरकार ने बड़े बलपूर्वक इस नाटक में कहा है।

नाटक का कथ्य अत्यन्त यथार्थवादी और सामयिक होते हुए भी उसका शिल्प अत्यन्त प्रतीकात्मक है। लेखक ने बड़ी कुशलतापूर्वक यथार्थ

और कल्पना का संयोजन किया है। एक ही पात्र द्वारा कई भूमिकाओं का निर्वाह, एक ही अंक में कई दृश्यों की योजना जो विना किसी मंच-सज्जा या उपकरण के ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, अलक्ष्य पात्रों की उपस्थिति (साक्षात्कार करने वाले पात्र) आदि नाटक में अंतर्निहित ऐसी स्थितियाँ हैं जिन्हें यथार्थवादी शैली में कभी प्रस्तुत ही नहीं किया जा सकता। जीवन के दस-पन्द्रह वर्षों के क्रिया-कलाप को इस नाटक में समेटा गया है, एक ही दृश्य में विभिन्न पात्रों को विभिन्न रूपों में भी प्रस्तुत किया गया है। नाटक के ये तथ्य जहाँ निर्देशक, अभिनेता एवं दर्शक की कल्पना को मुक्त-विचरण के लिए पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करते हैं वहीं ये निर्देशक के लिए सीमा भी वन जाते हैं। इन स्थलों को एक विशेष भाव-भंगी से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता। यही उसकी शक्ति और यही उसकी सीमा भी है। इसी कारण इस एक दृष्टि से विभिन्न प्रस्तुतियों में वहुत दूर तक एकरूपता आये विना नहीं रहती।

'एवम् इन्द्रजित्' का अनुवाद एक वड़ा सुखद और साथ ही तृप्तिकारी अनुभव रहा है। आज से प्रायः तीन साल पहले जव इस नाटक को देखा तो वहुत ही अच्छा लगा था और यह इच्छा हुई थी कि इसे हिन्दी में किया जाए, किन्तु बँगला रंगमंच पर इसकी सफलता हम लोगों पर भी कुछ ऐसी हावी थी कि साहस नहीं हो पाता था। अतः अनुवाद करने का प्रश्न भी नहीं उठता था। उसके वाद इस नाटक को दो बार और देखा और यह धारणा दृढ़ होती गई कि इसे अवश्य ही प्रस्तुत करना चाहिए। शीघ्र ही न भी प्रस्तुत किया जाए तो कम-से-कम अनुवाद तो कर ही डाला जाए। इस निर्णय ने अनुवाद करने को प्रेरित किया और उसमें हाथ लगाया। काम सुचारु रूप से आगे वढ़ा और पूरे गद्यांश का अनुवाद सहज ही हो गया। इसके वाद समस्या आई कविताओं के अनुवाद की। कविताएँ—'एवम् इन्द्रजित्' का अनिवार्य अंग हैं, उन्हें बाद देकर नाटक का अनुवाद करना नाटक के साथ अन्याय करना था और उन कविताओं को हृदयंगम करके उनका ऐसा सरस और प्रवाहमय अनुवाद करना ताकि कथ्य भी स्पष्ट हो

और आवृत्ति करने में अभिनेता एवं दर्शक दोनों को आनन्द मिले, कठिन कार्य था। अपनी प्राध्यापिका मित्र श्रीमती अमिता चक्रवर्ती से कविता के मूल भाव पर अच्छी तरह चर्चा करने के बाद अनुवाद किया। संशोधन और पुनःसंशोधन के बाद ही कविता को अंतिम रूप दिया जा सका। वैसे तो अपना कृतित्व अच्छा लगता ही है, यह हम सबकी सहज स्वाभाविक दुर्बलता है, किन्तु यह कृतित्व मुझे विशेष रूप से अच्छा लगा, इस अतिरिक्त दुर्बलता को स्वीकार करती हूँ। स्वयं बार-बार पढ़ने पर कविताएँ मन को और रमाती हैं, अपने प्रवाह में बहा ले जाती हैं। अवश्य ही इसमें बादल सरकार के कृतित्व का मेरे कृतित्व से अधिक योगदान है, फिर भी थोड़ा अंश तो मेरा है ही। अब तक मेरे द्वारा किये गए अनुवादों में यह सर्वश्रेष्ठ है, यह मेरी और मेरे मित्रों सभी की राय है।

'एवम् इन्द्रजित्' की तीन प्रस्तुतियाँ

ऊपर से पर्याप्त स्पष्ट दीखते हुए भी कोई कृति कितनी जटिल हो सकती है और उसके मूल कथ्य की व्याख्या करते हुए हम किस तरह एक-दूसरे से भिन्न दृष्टिकोण अपना सकते हैं, यह तथ्य बादल सरकार के 'एवम् इन्द्रजित्' की तीन प्रस्तुतियों को देखकर हस्तामलकवत् स्पष्ट हो गया। कथ्य और शिल्प, ये ही दो बिन्दु हैं जिन पर सारे नाटक का रूपायन निर्भर करता है। कथ्य सर्वथा लेखक का होता है, निर्देशक उसे यथासंभव आत्मसात् करता है, गहरे उतरकर उसका साक्षात्कार करता है और तब अपनी कल्पना के द्वारा उसे रंग-रंजित करके मंच पर खड़ा करता है। जहाँ कथ्य का अधिकांश लेखक का होता है, वहीं शिल्प का अधिकांश निर्देशक का होता है। नाट्यकार निश्चित रूप से एक विशेष शैली में नाटक लिखता है, उसका अपना शिल्प होता है तथापि निर्देशक को पूरी स्वतन्त्रता होती है कि वह इच्छानुसार इसका अतिक्रमण करे। पहले 'एवम् इन्द्रजित्' के कथ्य की बात लें। नाट्यकार का मूल उद्देश्य क्या है? क्या वह आज के जन-मानस की हलचल को चित्रित भर करना चाहता है या उसके माध्यम से

कुछ और कहना चाहता है ? क्या इन्द्रजित् की 'मृत्यु का वरण' करने की इच्छा प्रमुख बात है जिसे वह दर्शकों के सामने रखना चाहता है या मृत्यु का वरण न करके जीवन-पथ पर चलने की मानसी की प्रेरणा को वह उससे अधिक महत्त्व देना चाहता है ? क्या यह पथ सामान्य-साधारण पथ है या तीर्थ-पथ जिस पर चलने की दीक्षा कवि ने अपने जीवन के स्वर्ण-प्रात में ली थी और जिसे वह अपनी जीवन-संध्या में पहुँचकर भी भुलाना नहीं चाहता ? क्या कवि और इन्द्रजित् एक ही व्यक्तित्व के दो छिटके हुए रूप हैं ? इन्द्रजित् की निराशा, घुटन और थकान क्या लेखक की अपनी निराशा, घुटन और थकान है ? क्या जीवन की अनिवार्य परिणति यही है कि अमल-विमल-कमल की तरह जीवन की गाड़ी को खींचते चला जाए या इन्द्रजित् की तरह कुछ विशाल-विराट् करने की चेष्टा में सर्वथा टूट कर आस्था, विश्वास सबको खोकर जीवन को अस्वीकार करने की बात की जाए या कवि की तरह पथ की अन्तहीनता को जानते हुए भी, पथ के अन्त में तीर्थ नहीं है फिर भी तीर्थ-पथ तो है इस सत्य को स्वीकार करते हुए नियति को स्वीकार करके चलते चलना है ? नाटक का अन्त आशावादी है, निराशावादी है या इन दोनों से भिन्न कुछ और—आशा-निराशाहीन ??

ये कुछ सार्थक प्रश्न हैं जो 'एवम् इन्द्रजित्' को पढ़कर सामने आते हैं और जिनका निर्देशक-त्रय ने अपने-अपने ढंग से, अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार उत्तर देने का प्रयत्न किया है। वैसे तो इस नाटक की बँगला, गुजराती और हिन्दी में कई प्रस्तुतियाँ हो चुकी हैं, तथापि मैं शौभनिक (बँगला : कलकत्ता), अनामिका (हिन्दी : कलकत्ता) और दिशान्तर (हिन्दी : दिल्ली) की तीन प्रस्तुतियों की ही चर्चा कर रही हूँ, क्योंकि मैं इन्हें ही देख पाई हूँ। सर्वप्रथम इस नाटक को कोई तीन साल पहले मूल बँगला में देखा—निर्देशक एवं मुख्य अभिनेता थे गोविन्द गंगोपाध्याय। प्रस्तुति अत्यन्त प्रभावपूर्ण थी और लम्बे अरसे तक दिमाग पर छाई रही, अगले १२ महीनों में दो बार और अपने पास खींचने में समर्थ हुई। गोविन्द बाबू ने निश्चित रूप से आशावादी दृष्टिकोण लिया था। जीवन की सारी

उलझनों, दुखों के बाद भी जीवन स्वीकार करने के लिए है—किसी उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन न होते हुए भी हमें चलना है क्योंकि सामने पथ पड़ा है—रुकने का अर्थ है मृत्यु, जीवन की गति को बेताला करने की निरर्थक चेष्टा ! बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से गोविन्द बाबू ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया था यद्यपि इस प्रयत्न में इन्द्रजित् की घुटन और मानसिक द्वन्द्व कहीं खो गया था, जीवन को स्वीकार करने या न करने के निर्णय के बीच कसमसाता, छटपटाता उसका अन्तर कहीं अपने में ही डूब गया था, आत्मलीन हो गया था। नाटक के प्रारम्भ से ही मंच पर लगी लाल लाइट का अन्त में—इन्द्रजित् के जीवन को स्वीकार करने का निर्णय कर लेने पर—हरी हो जाना, इस सूक्ष्म और गम्भीर तथ्य को प्रस्तुत करने का बड़ा भौंडा तरीका था। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शौभनिक की यह प्रस्तुति मन पर गहरी छाप छोड़ गई थी और सच पूछिए तो 'एवम् इन्द्रजित्' नाटक और उसके लेखक बादल सरकार की श्रेष्ठता को अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर गई।

दूसरी प्रस्तुति अनामिका की थी, निर्देशक श्यामानन्द जालान थे। अवश्य ही वे नाटक के कथ्य को समझने और पकड़ने की दिशा में विशेष सचेष्ट थे। बादल बाबू के साथ कई-कई दिनों तक विचार-विमर्श इसके साक्षी हैं। उन्हें आज के युवामन की घुटन और द्वन्द्व ही नाटक का मूल कथ्य लगा—कहीं भी आशा की क्षीण रेखा उन्हें नहीं दिखी। नाटक की अन्तिम कविता में कही गयी तीर्थ और तीर्थ-पथ की बात जैसे उनके लिए गौण थी या कहूँ नगण्य थी, सिसिफस की तरह पत्थर के टुकड़े को पहाड़ की चोटी पर पहुँचाने की व्यर्थ चेष्टा की पीड़ा ही प्रमुख थी। उनके लिए लेखक और इन्द्रजित् एक न होते हुए भी—split-self न होते हुए भी—एक से ही थे, इन्द्रजित् की घुटन लेखक की ही घुटन थी। इस दृष्टि के परिणामस्वरूप चरित्रांकन बड़ा सशक्त हुआ, नाटक एक अत्यन्त गंभीर स्तर पर प्रतिष्ठित हुआ, उसका कथ्य कहीं मन को झकझोर देने वाला हुआ। किन्तु साथ ही बोझिल भी। अत्यन्त विवशतापूर्वक स्वीकार किया जीवन जिया

गया तो क्या, न जिया गया तो क्या !! मंचित होने के पूर्व, पूर्वाभ्यास के दौरान नाटक का अन्त इतना बोझिल लगता था कि पूछिए मत। ऐसा लगता था जैसे मंच पर खड़े लेखक—इन्द्रजित्-मानसी जीवित व्यक्ति न हों, अभिशप्त सिसिफस की प्रेतात्मा ही हों, जीवित लाश हों। किन्तु मंचन तक पहुँचते-पहुँचते यह घोर निराशा और व्यर्थता उतनी मर्म-भेदी नहीं रह गई, जीवन का स्वीकार जीवन का स्वीकार बना, मौत का नहीं। पता नहीं यह अन्तर निर्देशक की आंतरिक प्रेरणा के कारण आया या दर्शकों एवं आलोचकों की प्रतिक्रिया के कारण, किन्तु मेरी दृष्टि में था सही दिशा में। यदि जीवन में आशा का इतना-सा भी आभास न हो तो इन्द्रजित् का मृत्यु का वरण करना ही एकमात्र संगति हो सकती है।

इसी संगति को रूपायित किया था मोहन महर्षि ने, दिशान्तर की प्रस्तुति में। उनकी दृष्टि में लेखक और इन्द्रजित् एक ही व्यक्तित्व के दो रूप थे, इन्द्रजित् के माध्यम से लेखक अपनी ही बात कहना चाहता था। और वह बात भी अत्यन्त निराशाभरी, आशा-विश्वास-आस्थाहीन एक ऐसे व्यक्ति की जो अपने केन्द्र से स्खलित हो गया था, जो ज्वलंत उल्का की तरह आकाश भेदकर ऊपर उठने में सर्वथा असमर्थ साबित हुआ, इस चेष्टा में वह झुलसकर रह गया, न प्रकाश हुआ न ज्वाला !! ऐसे जीवन को लेकर क्या करना ?? और इसीलिए नाटक के अन्त में (निर्देशक द्वारा आरोपित) लेखक इन्द्रजित् का गला घोंट देता है—मानो सब-कुछ से ऊबकर, थककर अपने को निःशेष कर दे रहा हो। इस अन्त को ले आने के लिए निर्देशक ने नाटक के अन्तिम कई पृष्ठों को छोड़ दिया था, पथ और चलना, तीर्थ और तीर्थपथ उसके लिए महत्त्वहीन हो गये थे। मुझे ऐसा लगा कि यह नाटक के कथ्य को बहुत अधिक खींचना था बल्कि स्पष्ट कहूँ तो उसके साथ अन्याय करना था। नाटक का अन्तिम अंश कथ्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसे बाद देने का मतलब शरीर में आत्मा को बाद देना है। नाटक से सारी कविताओं को बाद देने के कारण ऐसा मतिभ्रम हुआ। इस भूल के कारण न तो नाटक की मूल आत्मा उभरकर आई और न ही चरित्र

(लेखक और इन्द्र का) पूरे आवेग और आंतरिक शक्ति के साथ सामने आये। ओम शिवपुरी जैसे सशक्त अभिनेता और अन्यान्य कुशल सहयोगियों के बावजूद बात बनी नहीं। कलकत्ता के प्रदर्शन में अवश्य ही इन्द्र की हत्या नहीं करवाई गई थी, तथापि अन्त के पर्याप्त अंश को छोड़ देने के कारण नाटक तब भी मुंडहीन ही था। अंत अत्यन्त दुर्बल रहा।

नाटक एवं प्रस्तुतियों के शिल्प के संबंध में कुछ कहे बिना बात अधूरी ही रह जायेगी। लेखक ने अत्यंत यथार्थवादी घटनाओं को अयथार्थवादी शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अतः अनेक स्थितियों, चरित्रांकन और बातचीत में जहाँ अत्यन्त यथार्थवादी पुट मिलता है वहीं उन्हें रूपायित करने में पर्याप्त कल्पना का योग अनिवार्य हो उठता है। नाटक में अनेक दृश्यों की योजना है, उन्हें यथार्थवादी शैली में बार-बार दृश्य-परिवर्त्तन करके प्रस्तुत किया जाए तो अच्छा-खासा तमाशा बन जाये। उन्हें एक ही दृश्य-बन्ध पर प्रस्तुत करना अनिवार्य है, अतः निर्देशक एवं दर्शक दोनों की कल्पना सजग हो उठती है। इसी प्रकार इन्द्रजित् को छोड़कर अन्य सभी पात्र एकाधिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। अत्यन्त सामान्य स्थूल परिवर्त्तन करके सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व प्रस्तुत करना नाटक की दूसरी और मूक अभिनय उसकी तीसरी अनिवार्यता है। तीनों निर्देशकों ने इनका सफलतापूर्वक निर्वाह किया। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि शौभनिक की प्रस्तुति में मूक-अभिनय वाले अंश सर्वाधिक सजीव एवं प्रभावपूर्ण थे। गोविन्द बाबू ने कुछ सामान्य चीजें, जैसे झाड़न, ताश आदि मंच पर ली थीं, श्यामानन्दजी ने उनको एकदम बाद दे दिया था, मोहन महर्षि ने लेखक के लिखने का साज-सामान पूरा दिया था। यह एक ऐसा नाटक है—(शायद—कोई भी नाटक ऐसा बना लिया जा सकता है)—जिसे इच्छानुसार शैली में उपकरणों को लेकर या बाद देकर प्रस्तुत कर सकते हैं। इस सिलसिले में अनामिका की प्रस्तुति विशेष उल्लेखनीय है। इसमें निर्देशक ने कुछ सफल प्रयोग किये जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था पात्रों को मंच पर सर्वथा अचल करवा देना—freeze करवा देना। इसके

परिणामस्वरूप कहीं जीवन की स्थिरता का बोध हुआ, कहीं हमारी एकरूपता का बोध हुआ और कहीं जीवन के अनवरत प्रवाह का। इसी प्रकार गोलाकार गति के द्वारा उन्होंने आदि-अंत-हीन जीवन, निरन्तर घूमती हुई पृथ्वी, सतत् चलायमान जीवन आदि तथ्यों का विभिन्न प्रसंगों में बोध करवाया। संगीत और आधुनिकतम पाश्चात्य नृत्य की अतिरंजित भंगिमाओं के बीच आज के जीवन में की जाने वाली बहुत-सी अर्थहीन बातों को कहलवाकर उन्होंने हमारे जीवन और हमारी बातों दोनों की व्यर्थता को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से मुखर किया था। साथ ही यह भी सही है कि सारी प्रस्तुति में भाव-भंगिमाओं एवं अंग-संचालन के क्षेत्र में अतिरंजना थी, जीवन के खोखलेपन को व्यक्त करने वाली बनावटी हंसी अनेक स्थलों पर बहुत अधिक हो गई थी, मूक-अभिनय की छोटी-छोटी बारीकियों की ओर कम ध्यान दिया गया था, अनेक स्थलों पर पात्र अनावश्यक रूप से हल्ला कर रहे थे। फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि श्यामानन्दजी ने नाटक को सबसे अधिक समझा है, साहसपूर्वक कुछ सफल प्रयोग किये हैं।

अभिनय की दृष्टि से संभवतः शौभनिक की प्रस्तुति सर्वश्रेष्ठ थी क्योंकि उनका टीम वर्क अच्छा था, अमल-विमल-कमल और मानसी अत्यन्त सजीव और सहज थे। लेखक के रूप में गोविन्द बाबू अमिट छाप छोड़ गये थे। हाँ, इन्द्र में वह आवेग नहीं था जो उस भूमिका के लिए अपेक्षित है। संभवतः इसका कारण चरित्रांकन रहा हो। श्यामानन्दजी की प्रस्तुति में उनके लेखक के अतिरिक्त अन्यान्य भूमिकाएँ दुर्बल थीं—विशेषकर उनकी तुलना में अन्य सभी पात्र बचकाने लग रहे थे। इन्द्र अत्यधिक लाउड था, मानों वह अपनी बात गले के जोर पर मनवाना चाह रहा हो। अनेक स्थलों पर मानसी का संघर्ष और द्वन्द्व जैसे आरोपित और बलपूर्वक लादा गया लग रहा था। अमल-विमल-कमल और सहज हो सकते थे। दिशान्तर के कलाकारों का स्तर सामान्यतः अच्छा होते हुए भी उनमें वह शक्ति नहीं थी कि वे मन को छू पाते। ओम शिवपुरी जैसे कलाकार भी नाटक की भिन्न

व्याख्या के कारण विशेष प्रभाव नहीं डाल पाये—कुछेक स्थलों को छोड़कर।

मुझे विश्वास है कि यह नाटक और लोकप्रिय होगा तथा अन्य कुशल निर्देशक इसके अन्यान्य आयामों को प्रस्तुत कर पायेंगे। कविताओं को बाद देकर इसे प्रस्तुत करने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। कृति अपने-आप में बड़ी सशक्त है। इसे पढ़ने, प्रस्तुत करने, देखने सभी में बड़े सुख एवं परितृप्ति का अनुभव होता है, जीवन के गहरे सत्य से साक्षात् होता है।

निर्देशक का वक्तव्य

बादल सरकार के नाटकों के मंचन को देखकर मन में कहीं एक विद्रोह जागता था। लगता था ये नाटक एक उन्मुक्तता माँगते हैं जो कि इन्हें मिल नहीं पा रही है। और उसी विद्रोह का फल मेरा 'एवम् इन्द्रजित्' का प्रस्तुतीकरण था। मंचन के बन्धनों को तोड़कर हमने इस नाटक की आत्मा को लोगों के सामने रखने की कोशिश की। लोग बैठे रहे, देखते रहे, इससे लगता है कि शायद हम किसी हद तक सफल भी हुए। पहले लगता था कि आम दर्शक शायद इसे झेल न पाएँ। पर देखा कि बहुत-से तथाकथित आम दर्शकों ने भी इसे पसन्द किया, समझा या नहीं—यह तो नहीं मालूम, पर उन्होंने इसे अनुभव किया ऐसा कुछ अवश्य लगा।

मैं भी नाटक को पहले केवल भाँपता हूँ। समझने की कोशिश नहीं करता। जल्दी से पढ़ता हूँ फिर आँखें बन्दकर लेट जाता हूँ। कुछ अटपटे विचार, कई एक विचित्र-से खाके चेतना में उभरते हैं। और यदि उसके बाद उसे खेलने की बहुत 'इच्छा' होती है तो उसके प्रस्तुतीकरण में जुट जाता हूँ। फिर भी बार-बार नहीं पढ़ता। साथी चुनकर सब एक साथ बैठकर पढ़ते हैं, उसे अनुभव करने की, समझने की भी कोशिश करते हैं। फिर उसे लेकर खेलने लगते हैं। एक दृश्य छोटा-सा किया, कुछ संवाद बोले—एकाध मुद्राएँ परखीं और पढ़ते रहे। एक खेल-सा हो जाता है हमारे लिए। और नाटक जब तक याद होता है, तब तक हमारे दिमागों में उसकी एक हल्की-गहरी आकृति तैयार हो जाती है।

नाटक समझना हम तब शुरू करते हैं जब हम उसका पूरा रिहर्सल

करने लगते हैं। तब भी एक मोटे तौर पर ही समझ पाते हैं।

"यह ज़रूरी नहीं है कि आशारहित स्वीकार के पीछे कोई एक पहचानी हुई भावना हो, मनःस्थिति (emotion) हो, मसलन निराशा या वैराग्य। बीतता हुआ समय और उस समय की परिस्थितियाँ नई मनःस्थितियों का निर्माण करती हैं। चार सौ वर्ष पहले कोई प्रेम शब्द को उस अर्थ में नहीं लेता था जिस अर्थ में आज या यों कहिए कि आज से ४० या ५० वर्ष पहले। यौन-भावनारहित प्रेम का उस समय कोई माने ही नहीं था।"

नाट्यकार बादल सरकार के इन शब्दों ने सहसा 'एवम् इन्द्रजित्' के रहस्य को हमारे सामने खोल दिया।

जीवन की संध्या में पहुँचा
मन मेरा यह भूल न जाये
तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं, है केवल पथ ही
इसी तीर्थ-पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

ये थीं 'एवम् इन्द्रजित्' की अंतिम पंक्तियाँ। और बादल सरकार के उक्त मनोभाव को अभिव्यक्त करने के लिए इन शब्दों का चुनाव विशेषकर 'मूल मंत्र' का तब भी खटका था आज भी कहीं कष्ट देता है। पर जहाँ उन्होंने यह सब कहकर हमें दिशा दी, वहीं एक भारी प्रश्न भी सामने खड़ा कर दिया। उस मूलभाव को कैसे व्यक्त किया जाए? अपने अन्दर से कैसे अचीन्ही, बिना नाम की भावना को जगाया जाए? और अनुभव कर लेने से ही तो काम खत्म नहीं होता—अनुभव कराना ही तो उद्देश्य था। और यही कारण है कि हम बार-बार फिसल जाते थे—अब भी फिसल जाते हैं। कभी मानसी रो पड़ती है—कभी इन्द्रजित्। कभी लेखक में ही गुरुआई जाग उठती है।

फिर सवाल रंगमंच का, दर्शकों का भी तो था। तटस्थ हो जाने से तो काम नहीं चल सकता। आध घण्टे बाद जम्हाई लेता हुआ दर्शक इधर-

उधर यदि देखने लग जाए तो तटस्थ होकर संवाद या स्थितियाँ कैसे बोली जाएँ। उनमें रंग तो उभारने ही होंगे।

इन्हीं सब समस्याओं के बीच रास्ता ढूंढता हुआ मेरा प्रस्तुतीकरण था। इस अर्थहीन जीवन की अर्थहीनता को भुलाकर और इसे पहचानते हुए भी अपने-आपको धोखा देकर कोई रह कैसे सकता है भला! तो क्या करे वह? मर जाए, आत्महत्या कर ले? जैसा कि इन्द्रजित् सोचने लगा था। या इस आशा में अपने को धोखा दे कि कभी तो सूरज उगेगा। पर सोचने वाले संवेदनशील व्यक्ति के जीवन से आशा तो आज खत्म हो चुकी है। चांद और सूरज तो कोई पहेली नहीं रहे। न स्वर्ग रहा न नरक। ज़मीन के अन्दर, पाताल के नीचे तो पाताल है और उसके नीचे फिर ज़मीन। सर के ऊपर हवा है और फिर शून्य और फिर ऊपर उठते-उठते घूमकर शायद फिर वही हवा और फिर वही ज़मीन। पत्थर को ढकेलकर पहाड़ की चोटी पर ले जाने की चेष्टा से पहले ही हम जान गए हैं कि पत्थर तो वहाँ टिकेगा नहीं, लुढ़क ही जाएगा। और यदि कहीं टिक ही गया तो भी क्या? क्या लेकर जिए ऐसा व्यक्ति—जो कि आज का आदमी है—अणुबम की अनुपम भेंट।

तो क्या करे वह? मर जाए?

फिर? मरने से भी क्या? यदि न मरने से कुछ है न जीने से, तो जीओ ही क्यों न···शायद···

पर नहीं, शायद भी तो नहीं रहा, इसका खोखलापन भी हम जान गए हैं, हमें कोई आस्था नहीं है···

खोखला शायद ही सही, शायद तो है, स्वप्न तो है।

—श्यामानन्द जालान

पात्र-परिचय

मौसी : शाश्वत माँ—आयु ५० वर्ष

लेखक : आयु ३५ वर्ष

मानसी : शाश्वत नारी-पत्नी, प्रेयसी या प्रेरणा; उम्र २५-३० के आसपास।

अमल विमल कमल इन्द्रजित्	आयु प्रारंभ में २० वर्ष, अन्त में ३५ वर्ष। विभिन्न भूमिकाओं में भिन्न-भिन्न आयु एवं वेशभूषा में सामान्य परिवर्तन अपेक्षित होगा।

मंच-निर्देश

चूंकि पूरा नाटक एक विशेष शैली में लिखा गया है और इसका पर्याप्त अंश मूक-अभिनय एवं प्रतीकात्मक शैली में ही प्रस्तुत किया जा सकता है, अतः चाहें तो पूरे नाटक को ही विना किसी उपकरण के प्रस्तुत किया जा सकता है। केवल मात्र बैठने के लिए कुछ सीटें या स्थान देना अनिवार्य होगा। यदि इसके अधिकांश को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत करना चाहें तो निम्न सामग्री की आवश्यकता होगी—

प्रथम अंक—लिखने की मेज-कुर्सी। उस पर कुछ किताबें, कुछ फ़ाइल, थोड़े कागज़, कई एक कापियाँ, कलमदान, कलम, घड़ी आदि। रद्दी की टोकरी। अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् के हाथ में आवश्यकतानुसार कापी-किताब। कालेज का घंटा। मूंगफली। कुछ फुटकर पैसे। मानसी के हाथ में एक नई किताव। यदि साक्षात्कार के लिए बैठे ज्ञानी-गुणियों के लिए टेबुल-कुर्सी देनी हो तो उसका पूरा सामान। चपरासी को बुलानेवाली छोटी घंटी। दो पैकेट सिगरेट, दो दियासलाई।

द्वितीय अंक—ऑफ़िस का दृश्य। बड़े साहब के लिए टेबुल-कुर्सी। टेबुल पर टेलीफोन, अन्यान्य सामान। पहले अंक के अंतवाला टेवुल ही काम दे सकता है। क्लर्कों के लिए चार टेबुल-कुर्सी। उन पर रखने का सामान—फ़ाइल, रजिस्टर, कागज़, पैड, कलमदान, पानी का गिलास, टाइपराइटर आदि। झाड़न। शार्टहैंड लेने के लिए छोटा पैड व पेंसिल। अखबार। कार की चाभी का गुच्छा।

तृतीय अंक—एक जोड़ी ताश। विदेशी—हवाई-पत्र। बार्ली का डब्बा।

एवम् इन्द्रजित्

प्रथम अंक

(टेबुल पर ढेर-सा कागज़ फैला है—सामने कुर्सी पर दर्शकों की ओर पीठ किए लेखक बैठा लिख रहा है। शायद बहुत देर से लिख रहा है। मौसी का प्रवेश। वैसे कुछ नाम देने के लिए मौसी कह दिया गया है—माँ भी हो सकती है, बूआ, चाची, बड़ी दीदी इनमें से भी कोई हो सकती है। मौसी हैरान आ गई हैं, बेटे का हिसाब-किताब कुछ समझ में ही नहीं आता। वैसे न समझ में आना ही मौसी लोगों का धर्म है।)

मौसी : यह तेरा क्या ढंग है, मेरी तो समझ में ही नहीं आता।

(लेखक निरुत्तर)

मैं पूछती हूँ खाना खाएगा या नहीं ? हद हो गई, मुझसे अब और नहीं होता।

(लेखक निरुत्तर)

बोलता क्यों नहीं ?

लेखक : अभी आता हूँ।

मौसी : यह तो तू तीन बार कह चुका है। मैं अब और पुकारने नहीं आऊँगी हाँ।

लेखक : मौसी, तुम भी तो यह बात तीन बार कह चुकी हो।

मौसी : जो मर्ज़ी आए सो कर। रात-दिन लिखना, लिखना, लिखना। न खाना न पीना, खाली लिखे जाना। भगवान् जाने इतना लिख-लिखकर क्या होगा।

(मौसी बड़बड़ाते हुए चली जाती है। लिखना कुछ देर पहले बन्द हो चुका है। लेखक उसे पढ़ता है, पढ़ते-पढ़ते उठकर आगे आता है। एक लड़की का प्रवेश। इसे मानसी नाम दिया जा सकता है)

मानसी : पूरा हो गया ?

लेखक : ना।

मानसी : क्या लिखा, मुझे नहीं सुनाओगे ?

लेखक : कुछ नहीं लिखा।

(कागज फाड़कर फेंक देता है)

मानसी : अरे, फाड़ डाला ?

लेखक : कुछ भी तो नहीं बना। मेरे पास लिखने के लिए कुछ भी नहीं है।

मानसी : कुछ नहीं है ?

लेखक : क्या लिखूं ? किसे लेकर लिखूं ? कितने आदमियों को मैं पह-चानता हूँ, कितने लोगो की बातें मुझे पता हैं ?

मानसी : (दर्शकों को दिखलाकर) क्यों, इतने सारे लोग तो हैं। इनमें से किसी को नहीं पहचानते ? किसी की बातें तुम्हें नहीं मालूम ?

लेखक : ये लोग ? हाँ, इनमें से शायद दो-चार को पहचानता होऊँ,

अपने ही जैसे दो-चार लोगों को। पर उन्हें लेकर नाटक नहीं लिखा जा सकता।

मानसी : चेष्टा करके देखो न।

लेखक : बहुत चेष्टा कर चुका हूँ।

(कागज़ के टुकड़े फेंककर लेखक वापस टेबुल के पास जाता है। कुछ देर रुककर मानसी लौट जाती है। अचानक घूमकर लेखक सामने की ओर बढ़ जाता है। प्रेक्षागृह में ठीक उसी समय देर से आए चार सज्जन अपनी सीट खोज रहे हैं। लेखक उन्हें पुकारता है)

लेखक : ज़रा सुनिए तो।

(दर्शकगण पहली बार पुकारने से समझ नहीं पाए कि उन्हें ही पुकारा गया है।)

लेखक : अरे ओ साहब, सुनिए न !

प्र० दर्शक : हमें कुछ कह रहे हैं ?

लेखक : जी हाँ, ज़रा दया करके इधर आइएगा।

द्वि० दर्शक : हम सब ?

तृ० दर्शक : स्टेज पर ?

लेखक : हाँ, आपसे एक ज़रूरी काम है। कुछ खयाल न कीजिएगा।

(चारों स्टेज के पास आते हैं)

प्र० दर्शक : ऊपर किधर से आऊँ ?

लेखक : यह···यह रही सीढ़ी, चले आइए।

(चारों मंच पर पहुँच जाते हैं)

लेखक : आपका नाम जान सकता हूँ ?

प्र० दर्शक : अमल कुमार बोस।

लेखक : आपका ?

द्वि० दर्शक : विमल कुमार घोष।

(लेखक तृतीय दर्शक की ओर देखता है)

तृ० दर्शक : कमल कुमार सेन।

लेखक : और आप ?

च० दर्शक : निर्मल कुमार···

लेखक : (अचानक चीखकर) नहीं।

(स्तब्धता। चारों आश्चर्यचकित-से रह जाते हैं। एकदम स्थिर)

लेखक : अमल, विमल, कमल और निर्मल—यह नहीं हो सकता। आपका अवश्य ही कोई दूसरा नाम है। होना ही होगा। ठीक-ठीक बताइए, क्या नाम है आपका ?

(मंच पर अंधकार हो जाता है। अमल, विमल और कमल पीछे हटकर खड़े हो जाते हैं। मंच के बीच में चतुर्थ दर्शक रह जाता है। अंधकार में लेखक का कंठस्वर सुनाई पड़ता है)

क्या नाम है आपका ?

च० दर्शक : इन्द्रजित् राय।

लेखक : तब निर्मल क्यों बताया था ?

इन्द्र : डर के मारे।

लेखक : डर ? किस बात का ?

इन्द्र : अशांति का। नियम के विपरीत कुछ करने से ही अशान्ति पैदा हो जाती है न।

लेखक : आप क्या हमेशा ही निर्मल नाम बतलाते आए हैं ?

इन्द्र : नहीं, आज ही, अभी ही पहली बार बतलाया है।

लेखक : क्यों ?

इन्द्र : अब उम्र हुई न। उम्र होने पर आनन्द से डर लगता है, सुख से भी डर लगता है। इस उम्र में शान्ति की इच्छा होती है। (इन्द्रजित् को अब घने मेघ के अंतराल की आवश्यकता है)

लेखक : आपकी उम्र क्या होगी ?

इन्द्र : एक सौ वर्ष। दो सौ वर्ष। पता नहीं। मैंट्रिकुलेशन के सर्टिफिकेट

के अनुसार पैंतीस वर्ष।

लेखक : जन्म-स्थान ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : शिक्षा-दीक्षा ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : कर्म-स्थान ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : विवाह ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : मृत्यु ?

इन्द्र : अभी होनी बाकी है।···

(कुछ देर शान्ति रहती है, फिर अंधकार में इन्द्र का स्वर उभरता है)

इन्द्र : ना···ठीक से तो नहीं मालूम।

(धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश होता है पर पूरे पर नहीं। इन्द्रजित् और उसके पीछे लाइन से मूर्ति की तरह अमल, विमल और कमल खड़े हैं। उनकी शून्य दृष्टि प्रेक्षागृह की पीछे की दीवार पर स्थिर है। लेखक दर्शकों की ओर मुड़ता है। एकबार सबकी ओर देखता है, फिर थके हुए अध्यापक की तरह एक स्वर में बोलना शुरू करता है)

लेखक : १९६१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार कलकत्ता की जनसंख्या है—२,९२,१२,८९१। इनमें से प्राय: ढाई प्रतिशत लोग ग्रेजुएट या और उच्च शिक्षित हैं। विभिन्न नामों से ये परिचित हैं। ये सभी मध्यवित्त हैं, यद्यपि इनके मध्य वित्त का पर्याप्त अन्तर है। ये सब बुद्धिजीवी हैं, यद्यपि बुद्धि ही जीविका का साधन होती तो इनमें से अधिकांश भूखों मर गये होते। ये शिक्षित हैं—यदि डिग्री को शिक्षा माना जाए तो। ये सब

उच्च श्रेणी के हैं क्योंकि छोटे लोगों से अपना अलगाव ये अच्छी तरह समझते हैं। ये हैं अमल, विमल, कमल···

(तीनों मंच छोड़कर चले जाते हैं—मानो मुक्ति मिली हो)

एवम् इन्द्रजित्

(इन्द्रजित् एक बार लेखक की ओर देखता है, फिर अमल आदि के पीछे-पीछे चला जाता है। उसकी दृष्टि में पीड़ा और चाल में क्लांति है)

संभव है इनके जीवन में नाटक हो। छोटे-छोटे नाटक, ढेर सारे नाटक। यह भी संभव है कि आगामी युग में कोई शक्तिशाली नाट्यकार इन नाटकों की रचना करे।

(मौसी का प्रवेश)

मौसी : तू अब भी खाने आएगा या नहीं ?

लेखक : नहीं।

(मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश)

मानसी : लिखा ?

लेखक : नहीं।

(मानसी का प्रस्थान)

लेखक : मैंने कई नाटक लिखे हैं। मैं और बहुत-से नाटक लिखना चाहता हूँ। पर···मैं दु:खी-पीड़ित जनसाधारण की कहानी नहीं जानता। खेतों में काम करने वाले किसानों को भी मैं नहीं पहचानता। सांप खेलानेवाले सँपेरे, संथाल मुखिया, मछुए—इनमें से किसी से भी तो मेरा परिचय नहीं है। अपने चारों ओर मैं जिन्हें देखता हूँ उनमें न रूप है, न रंग, न वस्तु। ये सब अनाटकीय हैं। ये तो अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् हैं।

(मंच पर एकदम अन्धकार हो जाता है)

मैं अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् हूँ।

(अन्धकार में समवेत स्वर फुसफुसाहट के रूप में उभरता है)

कंठस्वर : अमल, विमल, कमल एवं इन्द्रजित्
अमल, विमल, कमल एवं इन्द्रजित्
विमल, कमल एवं इन्द्रजित्
कमल एवं इन्द्रजित्
एवं इन्द्रजित्
इन्द्रजित्
इन्द्रजित्
इन्द्रजित्

(तेज़ वाद्ययंत्र में कंठस्वर डूब जाता है। तेज़ रोशनी हो जाती है—ऐसी रोशनी जिसमें कोई भी छाया सौन्दर्य की सृष्टि न कर रही हो। मंच खाली है। वाद्ययंत्र जैसे अचानक शुरू हुआ था वैसे ही अचानक बंद हो जाता है। कालेज का घंटा बजता है। इन्द्रजित् का प्रवेश। उसके ३५ वर्ष के चेहरे पर कोई मेकअप नहीं है किन्तु चालढाल से वह कम उम्र का लगता है। पीछे-पीछे अमल का प्रवेश। उसमें अध्यापक का-सा गांभीर्य है। अब से अमल, विमल और कमल कुछ-कुछ कठपुतली-से चलते हैं। भूमिका के अनुरूप भावभंगिमा और कंठस्वर है। फिर भी यान्त्रिकता-सी है—हास्यकर है फिर भी करुणा उत्पन्न करती है)

अमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

अमल : Everybody continues in it's state of rest or of uniform motion in a straight line unless it is compelled by an external impressed force to change that state.

(घंटा बजता है। अमल का प्रस्थान। इन्द्र खड़ा रहता है। विमल का प्रवेश)

विमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

विमल : Poetry in a general sense, may be defined to be the expression of the imagination.

(घंटी बजती है। विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश)

कमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

कमल : निबन्ध-साहित्य के मूल उपदान हैं, तर्क, भाव-भाषा और विचारों की परिच्छन्नता, चिन्तन की शृंखला और तत्त्व तथा तथ्य का उपयुक्त समावेश।

(घंटी। कमल का प्रस्थान)

इन्द्र : तत्त्व एवं तथ्य का उपयुक्त समावेश। तत्त्व एवं तथ्य का उपयुक्त समावेश। Expression of the imagination. Expression of the imagination. State of rest or of uniform motion. State of rest or of uniform motion. State of rest or of uniform motion.

(हल्ला करते हुए अमल, विमल एवं कमल का प्रवेश। तीनों इन्द्र को घेरकर खड़े हो जाते हैं। तीनों इस समय तरुण हैं)

अमल : खिलाड़ी ही नहीं है? दो रन में आउट हो जाने से क्या खिलाड़ी ही नहीं रहा?

विमल : पर इसका मतलव यह तो नहीं कि ऐसा खेल खेलेगा। फिर दूसरे टेस्ट में भी क्या करके निहाल किया था?

कमल : देखो भाई क्रिकेट है—Game of glorious uncertainty—क्यों इन्द्र?

इन्द्र : हाँ, बिलकुल।

अमल : यानी, कुशलता कोई चीज ही नहीं है? वाह, तुम्हारे कहने से ही।

इन्द्र : कुछ नहीं है, यह किसने कहा?

विमल : जो भी कहो, फुटबाल कहीं अधिक एक्साइटिंग है।

इन्द्र : हाँ, सो ठीक है।

कमल : एक्साइटिंग तो टेक्सास मार्का फ़िल्म भी होती है। तब फिर अच्छी फ़िल्में क्यों देखते हो ?

विमल : अमल, तुमने यूल बर्नर की कोई फ़िल्म देखी है ?

अमल : सब-की-सब देखी हैं। भाई, कमाल का काम करता है। चाहे जितना मार्लेन ब्रैंडो की तारीफ करो, यूल बर्नर के सामने वह कुछ भी नहीं है। इन्द्र, तुमने देखी है ?

इन्द्र : हाँ, दो देखी हैं।

कमल : धत्तेरे की···मुड़मुंडा।

अमल : जी हाँ, मुड़मुंडा। अरे, खोपड़ी ऐसी खोपड़ी है इसलिए मुड़ाकर रखने की हिम्मत करता है।

विमल : पर भाई, खोपड़ी ऐसी खोपड़ी है कहने से तो कुछ और ही अर्थ निकलता है।

कमल : माने जैसे, आइन्स्टाइन जैसी खोपड़ी।

इन्द्र : आइन्स्टाइन की थ्योरी पर एक किताब देख रहा था। कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा।

अमल : आइन्स्टाइन ने कहा है कि डायमेंशन तीन नहीं चार होते हैं।

विमल : चौथा डायमेंशन टाइम बतलाया है न ?

कमल : क्या पता बाबा : कालेज की फ़िज़िक्स ही नहीं पार पड़ रही है—ऊपर से फोर्थ डायमेंशन। अमल, तुम्हारी प्रैक्टिकल बुक सब तैयार हो गई ?

अमल : भैया की कापी पड़ी है—नकल मार दूंगा। कब सबमिट करनी है?

विमल : तेरह तारीख के भीतर-भीतर। मैंने अभी शुरू ही नहीं की है। इन्द्र, तुम्हारी गाड़ी कहाँ तक पहुँची ?

इन्द्र : कल शुरू की है। एक बड़ी अच्छी किताब हाथ लग गई थी सो कोर्स की किताब दो दिनों से छू ही नहीं पाया।

कमल : कौन-सी किताब ?

इन्द्र : बर्नार्ड शॉ के कम्प्लीट प्लेज़।

अमल : बर्नार्ड शॉ ? वाह ! क्या चाबुक मारता है ! तुमने मैन एण्ड सुपर मैन पढ़ा है ?

विमल : मैंने केवल प्लेज़ प्लेज़ेंट पढ़ा है।

कमल : हमलोगों के प्रमथ बीसी ने भी कुछ इसी ढंग पर लिखना शुरू किया था।

अमल : अरे हटाओ, कहाँ कौन, कहाँ कौन। कहाँ जी० बी० एस० और कहाँ प्र० ना० बी० !

विमल : प्रमथ बीसी पॉलिटिक्स ढुका देते हैं।

कमल : तो इसमें क्या बुराई है ? साहित्य में पॉलिटिक्स तो रहेगी ही —उसका रहना ज़रूरी है।

अमल : बिलकुल नहीं। साहित्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का प्रतीक है। पॉलिटिक्स जैसी गन्दी चीज़ से साहित्य का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

विमल : देखो भाई, गन्दी चीज़ शब्द पर मुझे आपत्ति है। गन्दगी भी यदि सत्य हो तो उसे बाद देकर साहित्य रचना करना एस्केपिज़िम है। साहित्य होगा—जीवन की प्रतिच्छवि, रियलिस्टिक। इन्द्र, तुम्हारा क्या ख़याल है ?

इन्द्र : मुझे कुछ ठीक से समझ नहीं आता। यह तो मानता हूँ कि साहित्य रियलिस्टिक होना चाहिए पर वह जीवन का नग्न चित्र होगा, यह भी···

कमल : (अचानक) अरे, कितना बज गया, जानते हो ? साढ़े सात।

अमल : माइ गॉड। प्रैक्टिकल बुक तैयार करनी है। चलो, चलो।

विमल : हमलोगों का रास्ता तो उल्टी ओर है।

कमल : चलो अमल।

(अमल और कमल का प्रस्थान)

विमल : इन्द्र, घर नहीं जाओगे ?

इन्द्र : मुझे···मुझे कुछ और काम करते हुए घर जाना है।

विमल : किधर जाना है ?

इन्द्र : इधर

विमल : उधर जाना था तो उन लोगों के साथ क्यों नहीं गये ?

इन्द्र : उस समय याद नहीं आया।

विमल : धत्तेरे की। अब अकेले-अकेले जाना होगा।

(विमल का दूसरी ओर प्रस्थान। अब तक एक रंग तबले का एक बोल बज रहा था। अब जरा द्रुत हो गया। लेखक का प्रवेश)

लेखक : अरे इन्द्र, तुम अभी तक बैठे हो ?

इन्द्र : हाँ।

लेखक : क्या सोच रहे हो ?

इन्द्र : कुछ नहीं।

लेखक : वे लोग आज नहीं आये ?

इन्द्र : आये थे।

लेखक : कौन-कौन ?

इन्द्र : अमल, विमल और कमल।

लेखक : क्या किया तुम लोगों ने ?

इन्द्र : गप्पें मारीं।

लेखक : क्या गप्पें मारीं ?

इन्द्र : इधर-उधर की, बहुत तरह की।

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, फिजिक्स, राजनीति, साहित्य ?

इन्द्र : ऐं ?···हाँ, क्रिकेट, सिनेमा, फिजिक्स, राजनीति, साहित्य। पर तुम्हें कैसे पता चला ?

(लेखक उत्तर नहीं देता। जेब से मूंगफली निकालकर देता है)

लेखक : लो, खाओ।

इन्द्र : क्या किया जाए, बोलो तो ?

लेखक : किसका क्या किया जाए ?

इन्द्र : पढ़ाई-लिखाई और अच्छी नहीं लगती ।

लेखक : तो फिर क्या करना चाहते हो ?

इन्द्र : सो मालूम नहीं। कभी-कभी मन करता है सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊँ ।

लेखक : कहाँ ?

इन्द्र : पता नहीं कहाँ । कहीं बहुत दूर । वहाँ क्या होगा, यह भी पता नहीं—जंगल, मरुभूमि, बरफ का ढेर; कुछ पक्षी—पेंगुइन, आस्ट्रिच; कुछ जानवर—कंगारू, जगुवर; कुछ मनुष्य—बेदुइन, एस्किमो, माउरी ।

लेखक : सीधी-सी बात—सरल भूगोल परिचय—डी० पी० आई० द्वारा छठी श्रेणी के लिए निर्धारित ।

इन्द्र : भूगोल से बाहर भी एक दुनिया है—वह दुनिया यहाँ नहीं है—कहीं और है—कहीं बहुत दूर—कहीं बाहर ।

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य—इन सबसे बाहर ?

इन्द्र : हाँ, इन सबसे बाहर ।

लेखक : तो चलो ।

इन्द्र : कहाँ ?

लेखक : तुम्हीं ने कहा न कि सब छोड़-छाड़कर भाग जाना चाहते हो ?

इन्द्र : अभी ही ?

लेखक : नहीं तो फिर कब ?

इन्द्र : छोड़ो, फालतू की बातें मत करो—तुमसे कहकर ही भूल की ।

लेखक : तुम्हारे पाकेट में कितने पैसे हैं ?

इन्द्र : आठ आने होंगे । क्यों ?

लेखक : मेरी पाकेट में सवा रुपया है। एक रुपये बारह आने में हावड़ा स्टेशन से जितनी दूर जा सकते हैं, चले जायेंगे, उसके बाद पदयात्रा।

इन्द्र : यह जानता कि तुम इस तरह मज़ाक उड़ाओगे तो तुमसे इन बातों की चर्चा ही नहीं करता।

लेखक : मैं एकदम सीरियस हूँ।
(इन्द्र लेखक के मुख की ओर देखता है। वह सचमुच सीरियस है। इन्द्र दुविधा में पड़ जाता है)

इन्द्र : पर, माँ ?

लेखक : हाँ, सो तो है। माँ।

इन्द्र : इसके अलावा परीक्षा एकदम सर पर है।

लेखक : ठीक। परीक्षा के बाद बात करेंगे। लो, थोड़ी-सी और बची है।
(बाकी मूँगफली देकर बाहर निकल जाता है। इन्द्रजित् शून्य दृष्टि से देखता खड़ा रहता है। नेपथ्य से मौसी का स्वर सुनाई पड़ता है—'इन्द्र')

इन्द्र : आया माँ।

(किन्तु हिलता नहीं। मौसी का प्रवेश)

मौसी : क्यों रे, खाएगा नहीं ? मैं कब तक चौका लिये बैठी रहूँ ?

इन्द्र : अच्छा माँ···

मौसी : क्या ?

इन्द्र : अच्छा···मैं यदि···माने मुझे यदि कहीं चला जाना पड़े···

मौसी : तेरी तो सारी बातें ऐसी ही अटपटी होती हैं। चल, खाना खा ले, रसोई पड़ी पड़ी ठण्डी हुई जा रही है।
(मौसी का प्रस्थान। नेपथ्य से पहले धीरे—फिर तेज स्वर में समवेत संगीत उभरता है। जिधर मौसी गई थीं, उधर ही इन्द्र का प्रस्थान)

गाना : एक दो तीन

एक दो तीन दो एक तो तीन (२ बार)
चार पाँच छ
चार पाँच छ पाँच चार छ (२ बार)
सात आठ नौ
सात आठ नौ आठ सात आठ नौ (२ बार)
नौ आठ सात छ पाँच चार तीन दो एक।

(गाने के बीच में लेखक का प्रवेश। गाने की अंतिम पंक्ति के स्वर के साथ स्वर मिलाकर गाते हुए लेखक सामने पाद प्रदीप के पास आकर एक ओर खड़ा हो जाता है)

लेखक : (गाना रुकते ही) अनाटकीय—एकदम अनाटकीय। इन लोगों को लेकर नाटक नहीं लिखा जा सकता—कभी नहीं। ऐ अमल, विमल, कमल···

(हो-हल्ला करते हुए तीनों आकर लेखक को घेर लेते हैं)

अमल : अरे कवि ! क्या हालचाल है ?

लेखक : अच्छा।

विमल : नया क्या लिखा, सो बतलाओ।

लेखक : कुछ खास नहीं।

कमल : अरे छिपाते क्यों हो ब्रदर ? डरते हो कि हमलोग नकल कर लेंगे ? चिन्ता मत करो, हमलोग वह भी न कर सकेंगे, लिखने में वर्तनी की भूल कर बैठेंगे।

(तीनों ज़ोर से हँस पड़ते हैं)

लेखक : केवल एक छोटी-सी कविता लिखी है।

अमल : देखो, निकली न। सुनाओ, सुनाओ।

विमल : काव्य-काकली शुरू करो हे कवि-शिरोमणि।

कमल : यदि हमलोगों की समझ में आ जाए तो फाड़ डालना और न आए तो किसी मासिक पत्रिका को भेज देना।

(तीनों का अट्टहास)

लेखक : सुनोगे ?

अमल, विमल, कमल : (एक साथ) हाँ-हाँ, ज़रूर।

लेखक : (कविता-पाठ करते हुए)

एक दो तीन
एक दो तीन दो एक तीन
चार पाँच छ
चार पाँच छ पाँच चार पाँच छ
सात आठ नौ
सात आठ नौ आठ सात आठ नौ।

अमल : आगे ?

लेखक : नौ-आठ-सात-छ-पाँच-चार-तीन-दो-एक।

विमल : बोले जाओ—बोले जाओ।

लेखक : और तो नहीं है।

कमल : बस इतना ही ?

लेखक : हाँ, बस, इतना ही।

(ज़रा देर चुप रहने के बाद तीनों का अट्टहास)

अमल : वाह बहुत अच्छी कविता है !

विमल : अरे भाई, मँजा हुआ हाथ है कवि का।

लेखक : समझ में आई ?

कमल : गणित के क्लास में सुनाने से समझता। कविता है न, कैसे समझ आएगी ?

(तीनों का अट्टहास)

लेखक : एक नाटक लिखने का इरादा कर रहा हूँ।

अमल : अचानक कविता छोड़कर नाटक ?

लेखक : अचानक नहीं, मैं काफी दिनों से सोच रहा हूँ।

विमल : लिख डालो, लिख डालो। बीशु दा को पकड़ करके यदि री-यूनियन में लगवा दो तो···

कमल : बीशु दा बड़े खुचड़हे हैं। सनत चौधरी—फोर्थ ईयर का—पहचानते हो न ? उसने काफी अच्छा नाटक लिखा था—पर बीशु दा को पसन्द ही नहीं आया। बोलो—ड्रैमेटिक क्लाइमेक्स ठीक से नहीं उभार पाए हो।

अमल : क्या नाटक लिखोगे ? सामाजिक ?

लेखक : सामाजिक माने ?

विमल : सामाजिक नहीं जानते ? तब फिर क्या लिखोगे ?

कमल : सामाजिक माने—आज के युग का—माने हमलोगों के समय का—

लेखक : हाँ, हमलोगों को लेकर ही लिखूंगा।

अमल : प्लाट क्या सोचा है ?

लेखक : प्लाट नहीं है।

विमल : ओहो, अच्छा थीम बतलाओ न।

लेखक : थीम ?···माने यही हमलोग।

कमल : अच्छा, हमलोग से मतलब ?

लेखक : मतलब···माने तुमलोग, इन्द्रजित्, मैं···

अमल : हमलोगों को लेकर नाटक लिखोगे ? तब हो चुका तुम्हारा नाटक लिखना।

विमल : हमलोगों के जीवन में नाटक है क्या ?

कमल : अरे नाट्यकारजी, हमलोगों को लेकर लिखा नाटक तो स्त्री-चरित्र-वर्जित हो जाएगा।

(तीनों का अट्टहास)

अमल : झूठ क्यों बोलते हो कमल ? पास के मकान वाली तुम्हारी नायिका ?

विमल : हाँ, मैं तो भूल ही गया था। कहाँ तक बात बढ़ी, कमल ?

कमल : अरे, मेरा तो खिड़की-काव्य दूर से ही रचा जा रहा है। अमल कितना बड़ा छिपा रुस्तम है, यह खबर है तुमलोगों को ?

पिछली पूजा में पुरी में क्या हुआ था, पूछो इससे।

विमल : क्यों अमल ? यह खबर तो हमलोगों के कानों तक पहुँची ही नहीं !

अमल : अरे छोड़ो···वह सब···

कमल : बोलो न राजा बेटा···ऐसे क्यों करते हो···

(तीनों खिसककर एक ओर होकर धीरे-धीरे बातें करते हैं। लेखक सुनता है, मगर थोड़ी दूर से। मानसी एक ओर से प्रवेश करती है और दूसरी ओर चली जाती है। तीनों गर्दन घुमाकर उसे देखते हैं। फिर तीनों सिर-में-सिर जुटाकर न जाने क्या कहते हैं। बात पूरी होने पर हँसी। मानसी का पुनः प्रवेश—इस बार दूसरी लड़की की भूमिका में है—हाथ का बैग, चलना-फिरना सब भिन्न है। फिर वही मूक अभिनय और तनिक और मज़ा लेते हुए जोर की हँसी। इसके बाद एक और सीधी-सादी लड़की के रूप में मानसी का प्रवेश। इस बार इन्द्रजित् साथ है। सब चुप रहते हैं। दृष्टि में कौतूहल और ईर्ष्या का भाव उभरता है। मानसी और इन्द्रजित् बातें करते हुए चले जाते हैं)

अमल : देखा ?

विमल : तभी मैं कहूँ कि इन्द्र कई दिनों से बदला-बदला क्यों लगता है।

कमल : Sinking Sinking Drinking water. ए कवि, देखा ?

लेखक : देखा।

अमल : क्या समझे ?

लेखक : कि नाटक स्त्री-चरित्र-वर्जित नहीं होगा।

विमल : इन्द्र को हीरो बना डालो और हमलोगों को मरे सैनिक।

कमल : हिरोइन कौन थी, बता सकते हो ?

अमल : क्या पता भाई ! इन्द्र तो हमें कुछ बताता नहीं।

विमल : हाँ, बड़ा चुप्पा लड़का है।

कमल : चुप्पा नही घमंडी है। अपने को ऊँचे स्तर का समझता है। मैं ऐसे लोगों की नस-नस पहचानता हूँ।

अमल : कवि, तुम पहचानते हो ?

लेखक : किसे ?

विमल : क्या हुआ, मूड आ गया क्या ? अरे, अपने नाटक की हिरोइन को ?

लेखक : उसका नाम मानसी है।

कमल : यह लो। कवि को मालूम है न। इन्द्र ने परिचय करवा दिया लगता है ?

लेखक : ना।

अमल : हमें घप्पा दे रहे हो, कवि ?

लेखक : विश्वास करो, मैंने उसे पहली बार देखा है।

विमल : अच्छा छोड़ो, इन्द्र ने तुम्हें क्या-क्या बतलाया है, सो बोलो।

लेखक : उसने कुछ नहीं बतलाया है।

कमल : हाँ न। पहली बार देखा है, इन्द्र ने कुछ बतलाया नहीं है, बस नाम मानसी है।

लेखक : उसका नाम मुझे नहीं पता। मेरे मन में आया कि उसका नाम मानसी है, सो कह दिया।

अमल : वा·· वा···। यह कवि कब कविता करता है और कब स्वस्थ रहता है, भगवान् जाने।

लेखक : अच्छा, नाटक का नाम क्या रखा जाए ?

विमल : सबसे पहले नाम ही ?

कमल : नाम पहले ही तो रहता है। तुम्हीं बोलो न, तुममें तो नाम-करण करने का अच्छा नैक है।

लेखक : मैं सोचता हूँ अमल-विमल-कमल-इन्द्रजित् और मानसी नाम दे दूं।

अमल : ओ ह्, जिल्द पर अटेगा ही नहीं।

विमल : हमलोगों को इसमें क्यों घसीटते हो ? हमलोग तो मरे सैनिक हैं।

कमल : और क्या ? इससे तो अच्छा है—इन्द्रजित् और मानसी।— उठो भाई, जाना नहीं है ?

अमल : कहाँ ?

विमल : कमल, चाय पिलाओगे ?

कमल : पिलाऊँगा। चलो।

(तीनों का प्रस्थान)

लेखक : इन्द्रजित् और मानसी। इन्द्रजित् और मानसी। (दर्शकों को सम्बोधित करते हुए भाषण देने की मुद्रा में) आप लोग जानते ही हैं कि इन्द्रजित् और मानसी को लेकर नाना देशों में नाना युगों में अनेक नाटक लिखे गये हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सुखान्त, दुखान्त। न जाने कितने नामों में, कितने रूपों में समाज के विभिन्न स्तरों से इन्द्रजित् और मानसी आए हैं, उन्होंने एक-दूसरे को प्यार किया है। न जाने कितने सुख-दुख, मिलन-विरह, ईर्ष्या-अभिमान और कितने ही जटिल मानसिक घात-प्रतिघातों के बीच इनका नाटक विकसित हुआ है। इन्द्रजित् और मानसी का प्रेम—एक चिरंतन नाटकीय उपादान।—इन्द्रजित्।

(इन्द्रजित् का प्रवेश)

इन्द्र : क्या हुआ ? चीख क्यों रहे हो ? (लेखक की नाटकीय वक्तृता और अतिनाटकीय पुकार के बाद इन्द्र का स्वर जैसे बड़ा बेसुरा-सा लगा। लेखक फिर भी नाटकीयता वनाए रखने की चेष्टा में है)

लेखक : बोलो इन्द्रजित् !

इन्द्र : क्या बोलूँ ?

लेखक : अपनी कहानी। जो कहानी चिर-पुरातन है फिर भी चिर-नवीन, जो महाभारत के युग से आरंभ करके···

इन्द्र : कविता छोड़कर सीधी सरल भाषा में अपनी बात कहोगे ? तुम क्या जानना चाहते हो ?

(लेखक का आवेग तब तक काफी दूर तक शान्त हो चुका है)

लेखक : तुम्हारी और मानसी की कहानी।

इन्द्र : मानसी ? मानसी कौन ?

लेखक : जिसके साथ तुम्हें उस दिन रास्ते में जाते देखा था।

इन्द्र : ओ ! देखा था ?···पर उसका नाम तो मानसी नहीं है ? उसका नाम है···

लेखक : उसके नाम की जरूरत नहीं है। मैंने उसका नाम मानसी रखा है।

इन्द्र : तुम्हारे नाम रखने का क्या मतलब है ? उसके माँ-बाप ने उसका नाम···

लेखक : माँ-बाप कुछ भी नाम रखा करें, उससे क्या बनता-बिगड़ता है ? तुम बतलाओ न !

इन्द्र : क्या बतलाऊँ ?

लेखक : अपनी और उसकी बातें। वह तुम्हारी कौन है ?

इन्द्र : बहन है।

लेखक : (जरा रुककर) बहन ?

इन्द्र : हाँ, मौसेरी बहन।

लेखक : मौसेरी बहन ? क्यों ?

इन्द्र : क्यों माने ? उसकी माँ मेरी मौसी हैं, इसलिए।

लेखक : नहीं, नहीं···पर वह तुम्हारे साथ क्यों ?

इन्द्र : घर आई थी, उसे पहुँचाने जा रहा था। ऐसे तो बराबर ही जाता हूँ।

लेखक : ओ···तो फिर···तो फिर उसका नाम मानसी नहीं है ?

इन्द्र : कह तो चुका हूं कि नहीं।

लेखक : मुझे ऐसा लगा था कि तुम दोनों आपस में बातें कर रहे थे।

इन्द्र : बातें तो कर ही रहा था।

लेखक : खूब घनिष्ठता से बातें कर रहे थे।

इन्द्र : (हँसकर) तुम्हें ऐसा लगा था ? सो, हो सकता है करता रहा होऊँ। उससे बातें करना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। (अक्सर सीधे रास्ते से उसे घर न पहुँचाकर)

लेखक : अच्छा, उससे बातें करना अच्छा लगता है ? क्यों ?

इन्द्र : अब, इस क्यों का मैं कैसे उत्तर दूं ! सारे दिन जैसी बातें होती रहती हैं उनसे भिन्न तरह की बातें होती हैं—शायद इसीलिए।

लेखक : क्रिकेट, राजनीति, साहित्य, इनकी बातें नहीं ?

इन्द्र : ना, क्रिकेट, राजनीति, साहित्य नहीं। कम-से-कम हर समय तो नहीं।

लेखक : तो फिर क्या बातें होती हैं ?

इन्द्र : बहुत-सी बातें होती हैं। मैं अपनी बातें करता हूं अपने परिचितों की बातें, अपने दोस्तों की बातें। वह···वह भी अपने घर की बातें, अपनी सहेलियों की बातें, कालेज की बातें करती है।

लेखक : और ?

इन्द्र : और क्या ? तुम्हारे साथ क्या बातें होती हैं ?

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, राजनीति···

इन्द्र : ना···हर समय तो नहीं। और बहुत-सी बातें भी होती हैं। तुम्हारे लेखन की बातें, लोगों की बातें, भविष्य की बातें—तरह-तरह की इच्छा-अनिच्छा की बातें।

लेखक : हाँ, वही पेंगुइन-कंगारू, एस्किमो की बातें ?

इन्द्र : हाँ, क्यों नहीं ? क्या मैं वे बातें सबसे कर सकता हूँ ?

लेखक : मानसी से कर सकते हो ?

इन्द्र : उसका नाम···

लेखक : मुझे पता है कि उसका नाम मानसी नहीं है। पर मैं यदि उसे मानसी ही कहूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति है ?

इन्द्र : (हँसकर) नहीं, कोई आपत्ति नहीं है। वरन् यह नाम अच्छा ही लगता है। उसके असली नाम में इतना काव्य नहीं है।

लेखक : तब बतलाओ।

इन्द्र : तुम क्या जानना चाहते हो ?

लेखक : मुझे जो कुछ बतला सकते हो वह उसे भी बतला सकते हो ?

इन्द्र : सकता हूँ नहीं, बतला चुका हूँ। उससे और भी बहुत-कुछ कहता हूँ जो तुमसे नहीं कह सकता।

लेखक : मुझसे नहीं कह सकते ?

इन्द्र : कह ही नहीं सकता, यह तो नहीं, पर कभी कहा नहीं यह सच है। कोई खास बात बतलाने लायक है, सो नहीं। इधर-उधर की बातें। कितने ही विचार-प्रश्न। कुछ अच्छा लगने की बातें, कुछ खराब लगने की बातें। बहुत-सी बहुत ही साधारण छोटी-मोटी घटनाओं की बातें।

लेखक : मानसी तुम्हारी मित्र है ?

इन्द्र : मित्र ? हाँ, मित्र कह सकते हो। उसके साथ बातें करना मुझे अच्छा लगता है। बहुत बार बातें करके जी हलका हो जाता है। यह जो सारा दिन चलता रहता है···हर रोज़ वहीं का वहीं (सहसा लेखक की ओर मुड़कर) अच्छा, तुम्हें कभी नहीं लगता ?

लेखक : क्या ?

इन्द्र : कि यह जो कुछ चल रहा है, इसका कोई अर्थ नहीं है ? एक विराट् चक्का बस घूम रहा है और घूम रहा है। और हमलोग भी उसके साथ-साथ चक्कर काटे जा रहे हैं।

लेखक : एक-दो-तीन। एक दो तीन दो एक तीन।

इन्द्र क्या कहा ?

(किन्तु तब तक एक-दो-तीन संगीत शुरू हो चुका है। अमल का प्रोफेसर के रूप में प्रवेश)

अमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

अमल : What is the specific gravity of iron ?

इन्द्र : Eleven point seven, Sir.

(घंटी। अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश)

विमल : रोल नम्वर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

विमल : Who was Mazzini ?

इन्द्र : One of the founders of modern Italy.

(घंटी। विमल का प्रस्थान। तुरन्त कमल का प्रवेश)

कमल : रोल नम्वर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

कमल : भारतीय वैराग्य भाव ने प्राचीन भारत के साहित्य को किस रूप में प्रभावित किया था ?

इन्द्र : प्राचीन साहित्य में जो प्रक्षिप्तांश की अधिकता मिलती है, उसका मूल कारण भारतीय अनासक्ति ही प्रतीत होती है। वर्णन, तत्त्वावलोचन और अवान्तर कथाएँ कहानी के स्वच्छंद प्रवाह को निरन्तर वाधित करती चलती हैं।

(कमल इस बीच चला गया है। वाद्ययंत्र में इन्द्र का स्वर डूब जाता है। हो-हल्ला करते हुए अमल का प्रवेश। अव वह तरुण है)

अमल : इन्द्र, मेरी प्राक्सी दे देना, मैं सिनेमा जा रहा हूँ।

इन्द्र : अच्छा।

(अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश)

विमल : इस शनिवार को अपने केमिस्ट्री के नोट्स दे सकोगे, इन्द्र ?

इन्द्र : हाँ, ले लेना।

(विमल का प्रस्थान। अमल का प्रवेश)

कमल : तुम्हारे पास एक रुपया है, इन्द्र ? सोमवार को लौटा दूंगा।

इन्द्र : आज तो नहीं है, कल ला दूंगा भाई।

(कमल का प्रस्थान। मौसी का प्रवेश)

मौसी : थाली परोसूं ?

इन्द्र : ज़रा देर बाद माँ !

मौसी : अब और कौनसी वेला होगी, इन्द्र ! खा-पीकर छुट्टी करो, बाबा।

(मौसी का प्रस्थान। वाद्य-संगीत पुनः तीव्र होता है—फिर नौ-आठ-सात-छः-पाँच-चार-तीन-दो-एक पर आकर शेष होता है)

इन्द्र : हम सब चक्कर काट रहे हैं, और चक्कर काटे जा रहे हैं।

मौसी : (नेपथ्य से) इन्द्र !

इन्द्र : आया माँ।

(इन्द्र का प्रस्थान। मौसी का प्रवेश)

मौसी : तुम खाना खाओगे या नहीं ?

लेखक : नहीं।

(मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश)

मानसी : लिखना हुआ, कवि ?

लेखक : नहीं।

(मानसी का प्रस्थान)

लेखक : एक-दो-तीन। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्। एवं मानसी। घर से स्कूल—स्कूल से कालेज—कालेज से दुनिया। सब बड़े हो रहे हैं और घूम रहे हैं। घूम रहे हैं और घूमे जा रहे हैं। एक-दो-तीन-दो-एक। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्।

(अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् आकर परीक्षा देने बैठे हैं। स्टूल और टेबुल। प्रश्नपत्र और कापी। लेखक अध्यापक के रूप में घूम-घूमकर निगरानी कर रहा है। घंटा बजता है)

लेखक : Time-up. Stop writing please.

(वे जल्दी-जल्दी लिखे ही जा रहे हैं। लेखक एक-एक करके सबकी कापियाँ छीनता-सा है। वे लोग बिना आवाज़ के परीक्षा की चर्चा करते हुए चले जाते हैं—संशय-भय, हताशा का भाव)

लेखक : स्कूल से कालेज—कालेज और परीक्षा—परीक्षा और पास। फिर दुनिया।

(अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् का प्रवेश। लेखक पीछे टेबुल-कुर्सी ठीक करता है)

अमल : पास होने के बाद क्या करोगे ?

विमल : पहले पास तो होऊँ—फिर आगे की सोचूंगा।

कमल : पास होऊँ चाहे फेल, मुझे नौकरी ढूंढ़नी ही है। बाबूजी इस साल रिटायर कर रहे हैं।

अमल : ढूंढ़ने से ही नौकरी मिल जाएगी क्या ? रोज़ ही अखबार देखता हूँ, कुछ भी तो काम लायक नहीं दिखता।

विमल : तुम्हें क्या चिन्ता है ? मुझे तो तीन-तीन बहनों की शादी करनी है।

कमल : अब तक मज़े में रहा। जैसे-जैसे रिज़ल्ट निकलने का दिन पास आता जा रहा है, वैसे-वैसे मेरे गले से रोटी नहीं उतरती।

लेखक : अमल कुमार बोस।

(अमल खुशी से चीत्कार कर उठता है। सब उसकी पीठ थप-थपाकर बधाई देते हैं।)

विमल कुमार घोष।

(फिर वही पुनरावृत्ति)

कमल कुमार सेन। इन्द्रजित् राय।
(प्रत्येक वार पारस्परिक बधाई। मौसी का प्रवेश। सब उनके पैर छूते हैं। मौसी आशीर्वाद देकर चली जाती है। वे चारों भी हो-हल्ला करते हुए चले जाते हैं)

लेखक : इस बार दुनिया। इन कुर्सियों पर बड़े-बड़े ज्ञानी-गुणी लोग बैठते हैं—परीक्षा लेते हैं—देखते हैं कि कौन-सा व्यक्ति कितने काम का है। और दरवाज़े से बाहर उस लम्बी बेंच पर बैठते हैं—अमल, विमल, कमल। एवं इन्द्रजित्।
(अमल, विमल और कमल घुसकर बेंच की ओर बढ़ते हैं।)
अभी नहीं, अभी नहीं। एक मिनट, एक मिनट और।
(तीनों लौट जाते हैं)
भूल गया था। इसके पहले थोड़ा-सा और है। वे कुर्सियाँ वहाँ नहीं हैं। बेंच की बात भी भूल जाइए। यहाँ पर हरी-हरी घास है—ये सब पेड़ हैं। और उधर उस पेड़ की घनी चोटी पर सिन्दूरी रेखा खिची है। जो सूर्य रोज उगता है, वही आज भी उगा था, इस समय अस्त हो रहा है। उधर···उस ओर, उन डालों के बीच एक गहरी सिन्दूरी रेखा।
(इसी बीच इन्द्रजित् और मानसी भीतर आये हैं। वे घने पेड़ के नीचे बैठ गए हैं। मानसी के हाथ में एक किताब है। लेखक सिन्दूरी रंग को देखते-देखते चला जाता है)

मानसी : तुमने मुझे यह किताब क्यों दी? उल्टे मुझे तुम्हें देनी चाहिए थी।

इन्द्र : क्यों?

मानसी : वा···रे, तुम पास हुए हो सो मैं ही तो दूँगी।

इन्द्र : कहीं लिखा है क्या कि मेरे पास होने पर तुम्हें उपहार देना होगा, मेरे देने से नहीं चलेगा?

मानसी : लिखा कहाँ होगा। ऐसा ही नियम है।

इन्द्र : खूब नियम मानती हो न ?

मानसी : (हँसकर) तुम मानने कहाँ देते हो ?

इन्द्र : मानना अच्छा लगता है ?

मानसी : लड़कियों को मानना ही पड़ता है ।

इन्द्र : लड़कियों को—यह बात बहुत बार तुम्हारे मुंह से सुन चुका हूँ। लड़कियों को नियम मानना होता है। पुरुषों के न मानने से चल सकता है पर स्त्रियों को मानना ही होता है।

मानसी : मैंने क्या कुछ झूठ कहा ?

इन्द्र : पता नहीं। मैं भी मानता हूँ, बहुतेरे नियम मानता हूँ। पढ़ाई-लिखाई करनी चाहिए—की। परीक्षा देनी चाहिए—दी। नौकरी करनी चाहिए—करूँगा। यह सब नियम-पालन ही तो है। हाँ, यह ठीक है कि नियम न होने पर भी नौकरी तो ज़रूर करता।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : कई कारण हैं। पहला यह कि अपने पैरों पर खड़ा हो सकूँगा। घर के रुपये से पढ़ना-लिखना मुझे कैसा लगता है, यह मैं तुम्हें बतला ही चुका हूँ।

मानसी : और क्या कारण है ?

इन्द्र : बहुत-से हैं। अच्छा, तुम एक बात बतलाओ तो।

मानसी : क्या ?

इन्द्र : सभी तो मानता हूँ। पर क्या नियम मानना होगा, यह बात भी माननी होगी ?

मानसी : न मानकर क्या करोगे ?

इन्द्र : नियम से घृणा करूँगा। कम-से-कम इतना तो बचना ही चाहिए।

मानसी : इससे लाभ ?

इन्द्र : जिस डोरी से मैं चारों ओर जकड़ा हुआ हूँ, उसकी पूजा करने

से भी क्या लाभ ?

मानसी : पूजा करने को कौन कहता है ?

इन्द्र : यदि यह कहा जाए कि डोरी ही नियम है और उसे मानना उचित है, तो फिर पूजा करने में और बाकी क्या रहा ?

मानसी : अच्छा, तुम क्या करना चाहते हो, सो तो बताओ।

इन्द्र : पता नहीं। इस बंधन को टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहता हूँ। चारों ओर से यह जो ऊँची दीवार जकड़े हुए है, उसे चूर-चूर कर डालना चाहता हूँ।

मानसी : अच्छा, तुम्हारी इतनी नाराजगी किस पर है ?

इन्द्र : दुनिया पर, चारों ओर के लोगों पर। तुमलोग जिसे समाज कहती हो न, उस पर और उसकी व्यवस्था पर। मैंने तुमसे लीला की चर्चा की थी न, याद है ?

मानसी : जिसके पति को टी० बी० हो गई थी ?

इन्द्र : हाँ। काफी दिन हुए उसके पति की मृत्यु हो गई। उसके ससुराल वालों ने उसे घर से निकाल दिया।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : कुछ दिनों तक रखा था। प्राविडेन्ट फंड और इंश्योरेंस का कुछ थोड़ा-सा रुपया पाना था। बस, तब तक रखा, फिर थोड़ा-बहुत जो गहना वगैरह था, सब छीन-छानकर उसे घर से निकाल दिया।

मानसी : फिर ?

इन्द्र : दूर के रिश्ते के किसी जीजाजी के यहाँ गई थी। उनकी एक छोटी-सी दूकान है। सुना है कि बहुत-से चोरी के काम में उनकी दुकान और वे लगे रहते हैं।

मानसी : उस लड़की का क्या होगा ?

इन्द्र : क्या होगा नहीं, जो होना था सो हो चुका। कल ही खबर मिली, पर है तीन महीने पुरानी। बतला सकती हो यह कैसा

नियम है ?

(मानसी निरुत्तर)

जिस स्टापेज से मैं बस पकड़ता हूँ, वहीं एक दिन एक सात-आठ साल के लड़के ने मुझे पकड़ा, जूता पालिश करेगा। उसकी गोद में कोई साल-भर का एक लड़का था, पालिश में सने एक चियड़े से खेल रहा था।

(मानसी चुप है)

मैंने पालिश नहीं करवाई, एक पैसा भी नहीं दिया बल्कि डाँट-कर उसे दूर हटा दिया। यदि और तंग करता तो शायद मार भी बैठता।

मानसी : (इन्द्र का हाथ पकड़ते हुए) पर क्यों ?

इन्द्र : पता नहीं। मैं नहीं जानता कि किसे मारना चाहिए। उसे नहीं मारना चाहिए, यह समझता हूँ, फिर भी शायद उसे मार बैठता। वहाँ नियम का पालन शायद मुझसे न होता। जिस नियम के अनुसार सात साल के बच्चे को पालिश करनी पड़े और साथ ही गोद के भाई की देखरेख करनी पड़े, उस नियम को मैं नहीं मान सकता।

मानसी : किन्तु यह तो अलग बात है।

इन्द्र : अलग कैसे है ? इसी नियम का एक दूसरा रूप तुम्हारे घर में चलता है। वहां के सारे नियम तुम मानती हो और बोलती हो कि मानना होता है।

मानसी : (मुलायम स्वर में) तुम क्या मुझे डाँटोगे ही ?

इन्द्र : (ज़रा देर चुप रहकर) मैं तुम्हें डाँट नहीं रहा हूँ, यह तुम जानती हो।

(मानसी चुप रहती है)

नहीं जानती ?

मानसी : जानती हूँ।

इन्द्र : फिर इस तरह क्यों बातें करती हो ?

मानसी : तुम्हें ऐसे देखकर मुझे न जाने क्यों डर लगता है।

इन्द्र : कैसे देखकर ?

मानसी : यही गुस्सा करते हुए। नियम के ऊपर गुस्सा करते हुए।

इन्द्र : (ज़रा-सा हँसकर) इस गुस्से का कोई मूल्य नहीं है। यह गुस्सा अन्धा है, अक्षम है। यह तो दीवार से माथा फोड़ने जैसा है।

मानसी : तब फिर खुद ही क्यों अपने को इस तरह क्षत-विक्षत करते हो ?

इन्द्र : तुमने बाइबिल पढ़ी है ?

मानसी : बाइबिल ?

इन्द्र : ज्ञान-वृक्ष के फल की कहानी जानती हो ? जिस फल को खाकर एडम और ईव स्वर्गच्युत हुए थे !

मानसी : जानती हूँ।

इन्द्र : मैं भी यदि ज्ञान-वृक्ष का फल न खाता तो तुम्हारे नियमों वाले इस समाज के स्वर्ग में सुख से रहता। अब तो दीवार से सर फोड़ने के सिवा और कोई उपाय ही नहीं है।

(कुछ देर दोनों चुप रहते हैं)

मानसी : कभी-कभी सोचती हूँ तुम न होते तो मेरा क्या होता।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : तुम शायद सुनकर गुस्सा करोगे। मैं बहुत-कुछ मान लेती हूँ क्योंकि तुम हो। तुम न होते तो शायद मैं भी गुस्सा करती।

इन्द्र : इसका मतलब तो यह हुआ कि मैं तुम्हारा नुकसान कर रहा हूँ।

मानसी : ऐसे क्यों कहते हो ? फिर कभी मत कहना। (इन्द्र चुप रहता है) मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? तुम नहीं जानते कि तुम मेरे लिए क्या हो ? तुम हो इसलिए मुझमें जैसे एक शक्ति रहती है, जिसके सहारे मैं जी पाती हूँ। वह शक्ति न होती तो मैं न

जाने कब की डूब गई होती। (इन्द्र सुन रहा है) पर मेरा ज़ोर गुस्सा करके नहीं मिलता। मैं गुस्सा नहीं करना चाहती। मुझे जीवन अच्छा लगता है, बहुत-कुछ मानती हूँ क्योंकि मानना ही होता है; फिर भी मुझे क्षोभ नहीं होता। तुम हो इस कारण जीवन को बड़े सहज भाव से (हठात् रुककर)···मैं तुम्हें ठीक-ठीक समझा नहीं पाऊँगी।

इन्द्र : बोलती जाओ, रुक क्यों गईं ?

मानसी : नहीं, मैं सब बातें ठीक से नहीं बता पाऊँगी। कोई दूसरी बात करो।

इन्द्र : दूसरी ही बातें तो हो रही थीं।

मानसी : यह किताब यदि मेरी समझ में न आई तो समझा दोगे न ?
(इन्द्र मानसी की ओर देखता रह जाता है।)
क्या हुआ, जवाब नहीं दिया ?

इन्द्र : मुझे जिस दिन नौकरी मिलेगी, उसके दूसरे दिन तुमसे विवाह करूँगा।

मानसी : ना।

इन्द्र : तुम देखना।

मानसी : तुम भूल गये कि मैं तुम्हारी मौसेरी बहन हूँ ?

इन्द्र : भूल कैसे सकता हूँ ! जितनी बार विवाह की चर्चा की है, हर बार तुमने इस बात की याद दिलाई है सो कभी भूल सकता हूँ ?

मानसी : हर बार तुमने कहा है—मैं इसे नहीं मानता।

इन्द्र : सच ही तो कहा है। क्यों मानूँ ? मैं कुछ नहीं मानूँगा।

मानसी : मुझे भी नहीं ?

इन्द्र : तुम्हें मानता हूँ पर तुम्हारे नियमों को नहीं।

मानसी : मुझे तुम बहुत दिनों बरदाश्त नहीं कर पाओगे।

इन्द्र : यह एक और बकवास तुम लगाये रहती हो।

मानसी : मैं बिलकुल ठीक कहती हूँ। मैं एक बहुत साधारण लड़की हूँ।

इन्द्र : और मैं एकदम असाधारण।

मानसी : क्या मालूम ? पर सचमुच, तुम थोड़े असाधारण तो हो।

इन्द्र : सुनकर खुशी हुई।

मानसी : ई···बिलकुल असाधारण नहीं हो।

इन्द्र : चलो, तब तो झमेला ही खत्म हुआ।

मानसी : क्या खत्म हुआ ?

इन्द्र : एक साधारण लड़का एक साधारण लड़की से ब्याह करेगा, इसमें तो कोई झमेला नहीं होगा।

मानसी : कुछ खत्म नहीं हुआ है। चलो, घर चलो।

इन्द्र : नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।

मानसी : देर नहीं हो रही है ?

इन्द्र : हुआ करे।

मानसी : हाँ न। तुम्हारे कारण मैं हर समय घर में डाँट सुना करूँगी न ?

इन्द्र : कैसा घर ?···घर जहन्नुम में जाए।

मानसी : लो, फिर शुरू हुआ। चलो···उठो।

इन्द्र : (उठकर) चलो।

मानसी : ऊ···बड़ा गुस्सा दिखा रहे हो···मानो मैं इससे डर जाऊँगी न।

इन्द्र : चलो, देर हो रही है। घर में डाँट पड़ेगी।

मानसी : नहीं जाऊँगी।

इन्द्र : ठीक है, तो फिर मैं बैठा।

मानसी : (उठते हुए) ऐ···नहीं···नहीं···। चलो।

(इन्द्र मानसी के कन्धे पर हाथ रख देता है। मानसी हाथ हटा देती है।)

क्या कर रहे हो ? देखते नहीं, यह पार्क है।

इन्द्र : पार्क है तो क्या हुआ ?

मानसी : (धीरे से) उधर देखो न, इस पेड़ के नीचे एक आदमी बैठा है।

(उनके खड़े होने के बाद लेखक अँधेरे में एक ओर आकर बैठ

गया था।)

इन्द्र : तो उससे क्या हुआ ?

मानसी : वह देखेगा तो ?

इन्द्र : देखे न, खूब अच्छी तरह देखे।

(फिर से मानसी के कन्धे पर हाथ रखता है। मानसी हाथ हटाकर आगे बढ़ जाती है। हँसते-हँसते इन्द्र भी उसके पीछे-पीछे चला जाता है। लेखक सामने की ओर आ जाता है।)

लेखक : इन्द्रजित् और मानसी। घूमते-घूमते वे बहुत दूर निकल आए हैं। बहुत दूर ? चले आये हैं ? या घूम रहे हैं···केवल घूम रहे हैं ? वे विवाह कर सकते हैं। फिर···वही चक्कर। एक-दो-तीन-चार-तीन-दो-एक। यह एक सवाल है। आवर्त्तन का सवाल। पूरे सवाल का उत्तर शून्य है इसीलिए कोई पूरी संख्या नहीं लेता। छोटी करके लेता है। उत्तर होता है जीवन। हर एक व्यक्ति का अलग-अलग तरह का जीवन।

ये पथरीले नयन विगत के
रहें चतुर्दिक् पड़े, घूरते
बँधा छन्द में
यह अनादि का खेल
रहे चलता अनन्त तक।
बँधा प्रकाश—अन्धकार के आवर्त्तन में
रक्तिम ध्वनि वह समय—काल की रहे गूंजती।
दिवा-रात्रि के खंड-खंड भी
एक सूत्र में हो अनुबंधित।
खो जाएँ अनजान दिशा में
भूत-भविष्य खोजते अपना ठौर-ठिकाना
मैं क्यों सोचूं—वर्तमान तो मैं हूँ।
क्या मिलना है—सूक्ष्म हिसाब लगा, संख्या गिन

उन प्रश्नों को हल करने की चेष्टा करके
हल जिनका है असम्भाव्य ?
क्या करना है सपनों के वायवी तंतु से
आगत के आँचल को बुनकर ?
रात्रि-दिवस के मधुर छंद का
ताल कभी भी नहीं कटेगा।
फिर क्यों करते व्यर्थ सोच
जंजाल जमा क्यों करते मन के देवालय में ?
बांध सको तो बाँधो अपने हृत्-स्पन्दन को
समय-ताल के साथ—
नहीं कुछ भी हो तब परवाह।

(अमल-विमल-कमल का प्रवेश)

लेखक : रुको, अभी नहीं, अभी भी समय नहीं हुआ है।

(तीनों का प्रस्थान)

बस एक मुहूर्त। इस मुहूर्त के आवर्तन को अस्वीकार करो—अर्थात् पूरे सवाल को अस्वीकार करो। एक मुहूर्त—बस वर्तमान का एक मुहूर्त। यही तो जीवन है।
फिर भी भोला मन कर पाता नहीं इसे स्वीकार
निरन्तर ढोता ही जाता है, बोझिल उन अंकों का भार
खोजता उत्तर उन प्रश्नों का, जिनको हल करना दु:साध्य।
मान लूं कैसे मैं यह बात कि
उत्तर दीर्घकाल का शून्य।
अल्प दिन की ही संख्या जोड़ रहा मैं बैठा सब दिन मूक
अभी तो लिखने को है शेष
प्रकृति के पात-पात पर शिशु अक्षर में
क्षण-क्षण की, जीवन की भाषा
अभी बहुत है शेष।

(कविता-पाठ के साथ-साथ लेखक पर प्रकाश कम होने लगता है। पीछे टेबुल और कुर्सियाँ, दरवाज़े के बाहर बेंच। तीव्र प्रकाश। कविता-पाठ पूरा करके लेखक चला गया है। अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् आकर उसी बेंच पर बैठे हैं। कपड़े टिपटाप हैं, तनिक सतर्क और कठोर भंगिमा। घंटी बजती है। अमल उठकर कमरे में जाता है। चेयर पर बैठे अदृश्य ज्ञानी-गुणियों को नमस्कार करता है। अनुमति पाकर सामने की कुर्सी पर बैठता है। मूक प्रश्नों का मूक उत्तर देता चलता है। बाहर बेंच पर वार्तालाप चल रहा है।)

विमल : कैबिनेट मिनिस्टरों के नाम याद हैं ?

कमल : ऊँहूँ, मैंने वह सब नहीं देखा है।

विमल : ईयर बुक ले आते तो अच्छा होता।

कमल : क्या अच्छा होता ? कितना रटते ?

विमल : कितना बजा इन्द्र ?

इन्द्र : बारह बीस।

कमल : ग्यारह बजे से हम लोगों को बुलाकर बैठा दिया और बाबू लोग आये बारह बजे इण्टरव्यू लेने।

विमल : यह सब दिखावा भर है। आदमी तो पहले ही चुना जा चुका है।

कमल : कौन हुआ होगा ? अमल के पहले जो गया था, वही ?

विमल : क्या पता ! अपने राम नहीं हैं, इतना भर जानते हैं।

कमल : अमल को गए कितनी देर हुई ?

इन्द्र : पाँच मिनट हुए होंगे।

विमल : क्या-क्या पूछते हैं बाबा ?

(भीतर अमल उठता है। सामने दरवाज़े की ओर बढ़ता है, पर कुर्सी की डाँट खाकर दूसरी ओर बाहर निकल जाता है।)

कमल : बहुत टेकनिकल प्रश्न पूछते होंगे ?

विमल : नहीं। खास नहीं। असल में सही उत्तर पर उतना ध्यान नहीं

देते जितना उत्तर देने के ढंग पर।

कमल : हाँ कोई बात न जानने पर स्मार्टली 'आई डोंट नो' कह देने से चल जाता है।

इन्द्र : 'आई डोंट नो' स्मार्टली कहना बहुत कठिन होता है।

(घंटी। विमल भीतर जाता है। ये दोनों बेंच पर पास-पास बैठते हैं। भीतर विमल का वैसा ही मूकाभिनय)

कमल : गला थोड़ा बैठ रहा है। तुम्हारे पास लौंग है ?

इन्द्र : ना।

(कमल सिगरेट निकालता है।)

गला पकड़े है, सिगरेट पीओगे ?

कमल : ठीक नहीं होगा न ?

(सिगरेट रख लेता है।)

तुम इसके पहले कितने इण्टरव्यू दे चुके हो ?

इन्द्र : पाँच।

कमल : तुम अच्छे हो। मेरा तो यह चौथा ही है। किसी की खबर मिली ?

इन्द्र हाँ, एक का रिग्रेट लेटर मिला है।

कमल : (तनिक रुककर) अगले महीने बाबूजी रिटायर कर रहे हैं।

(इन्द्रजित् उत्तर नहीं देता। लेखक का प्रवेश। मुस्कुराते हुए इन्द्रजित् की बगल में बेंच पर बैठ जाता है। ज़रा देर सब चुप रहते हैं।)

कमल : कितना बजा ?

इन्द्र : साढ़े बारह।

कमल : आपको कितने बजे बुलाया था ?

लेखक : ग्यारह बजे। मेरा एक और इंटरव्यू आज ही साढ़े दस बजे पड़ गया। मैंने तो इसकी आशा ही छोड़ दी थी, पर एक चान्स ले लिया और क्या ?

कमल : आपको बुलाया तो नहीं न ?

लेखक : नहीं भाई, इसीलिए ज़रा हिम्मत हो रही है।

कमल : आप भाग्यवान हैं।

(इसी बीच भीतर मूकाभिनय समाप्त करके विमल दूसरी ओर चला जाता है। घंटी। कमल भीतर जाता है।)

लेखक : सिगरेट ?

इन्द्र : मैं नहीं पीता, थैंक्स।

लेखक : (सिगरेट जलाता है।) क्या पूछ रहे हैं, कुछ पता चला ?

इन्द्र : ना। उधर से बाहर निकलने को कह रहे हैं।

लेखक : ऐसा ही यूज़अली करते हैं। भाई लोगों के पास प्रश्न का स्टाक तो कम ही रहता है।

इन्द्र : आपका पहले वाला इंटरव्यू कैसा हुआ ?

लेखक : खूब अच्छा नहीं हुआ। वहाँ होगा नहीं। नौकरी अच्छी है।

इन्द्र : इसीलिए इस इंटरव्यू को छोड़कर उसमें गये थे ?

लेखक : हाँ, पर जानते हैं, मुझे लगता है कि यह पॉलिसी गलत है। जब नौकरी पाना ही ज़रूरी है तब खराब नौकरी के लिए ही पहले इंटरव्यू देना चाहिए क्योंकि उसमें चान्स ज़्यादा रहता है।

इन्द्र : चलिए, इस बार तो दोनों ही हो गये।

लेखक : सो तो लक रहा। नहीं तो इसी अफ़सोस में तीन रात नींद न आती। मुझे नौकरी की कितनी ज़रूरत है, आप नहीं जानते।

इन्द्र : नौकरी की तो सभी को ज़रूरत है।

लेखक : सो तो एकदम ठीक है। माने जेनरली सबको ज़रूरत होती है। पर मुझे पर्टिकुलरली है।...तो आपको सब बातें खोलकर ही बता दूँ। उधार करके मैंने एक फ्लैट भाड़े पर ले लिया है। कम भाड़े का सुविधाजनक फ्लैट तो मेरे लिए हर समय खाली नहीं पड़ा रहेगा। इसमें और कुछ चाहे न हो, पानी की कल अलग है।

इन्द्र : आपकी बात पूरी तरह समझ नहीं पाया ?

लेखक : माने···मैंने ब्याह कर लिया है और क्या ? बाबूजी राज़ी नहीं थे। इसी महीने नौकरी न मिली तो फ्लैट छोड़ देना पड़ेगा। मेरी हालत समझ रहे हैं। उधार ले-लेकर कितने दिन मकान-भाड़ा दे सकता हूँ ?

(कमल का साक्षात्कार हो चुकता है—वह बाहर निकल जाता है। इसके बाद अमल-विमल-कमल तीनों लौटकर इंटरव्यू लेने के लिए तीन कुर्सियों पर बैठते हैं। लेखक की बात पूरी होने पर अमल घंटी बजाता है, इन्द्रजित् भीतर जाता है। इस बार चारों मूक अभिनय में भाग लेते हैं। लेखक कुछ देर तक बैठा सिगरेट पीता रहता है, फिर सिगरेट फेंककर सामने आ जाता है।)

लेखक : अमल रिटायर करता है, उसका लड़का अमल नौकरी करता है। विमल बीमार हो जाता है, उसका लड़का विमल नौकरी करता है। कमल मर जाता है, उसका लड़का कमल नौकरी करता है। एवम् इन्द्रजित्—इन्द्रजित् का लड़का इन्द्रजित्। उधर फुट-पाथ पर सात साल का एक लड़का हाथ में काठ का बक्स और गोद में साल-भर के लड़के को लिए खड़ा रहता है। उधर फुट-पाथ पर एक लड़की खड़ी रहती है, नाम लीला। उधर आकाश सिंदूरी हो उठा है, वहाँ बैठी मानसी जीवन को प्यार करना चाहती है। बहुत सारे जीवन को। जाने-अनजाने अज्ञात अपरि-चित प्रकाश-अन्धकार। खण्ड-खण्ड टुकड़े अणु-परमाणु और सबको मिला दिया जाए तो चर्खी (नागरदोला) का ऊपर-नीचे जाना-आना।

घूम रही है सृष्टि निरन्तर
आवर्तन में बँधी चल रही।
अस्त-व्यस्त आकाश

अचेतन-चेतन का सम्भार
ज्ञान-अज्ञान बीच प्रस्तार—
बांधने को आतुर तत्काल
कर रहा हूँ मैं सतत प्रयास।

मुझे इन लोगों की कहानी कहनी ही होगी—इनकी जीवन-गाथा को मुझे नाटक में बांधना ही होगा—

किंतु भाषा तो है प्राचीन
कहानी क्षत-विक्षत, बलहीन
रोशनी की रेखा है क्षीण
सभी कुछ धुंधलाया-सा,
है प्रकाश दिग्भ्रान्त।
समाधि की जड़ता का यह नागपाश
है घेरे चारों ओर
वहीं पर मुझे जलाकर आग चिता की
करना है आलोक।

(इन्द्रजित् साक्षात् करके जाता है। पुनः घंटी)

घंटी बज रही है। (एक परमाणु और च्युत हो गया है। वह एक और परमाणु को आमंत्रित कर रहा है—तीन परमाणु परस्पर पुकार रहे हैं। और भी) ढेर-ढेर परमाणुओं से मिलकर बनी यह पृथ्वी घूम रही है और चक्कर काट रही है। और एक पर एक सेकण्ड, मिनट और घंटे चक्कर काट रहे हैं, काटे ही जा रहे हैं।

(फिर घंटी बजती है। अमल-विमल-कमल धीरज खो-सा रहे हैं।)

घंटी बजी है। फिर बजेगी। फिर भी पृथ्वी है फिर भी शताब्दी है। हमारी पृथ्वी, हमारी शताब्दी। चर्खी जहन्नुम में जाए। सवाल भी जहन्नुम में जाएँ। हम हैं—अमल-विमल-कमल।

एवं इन्द्रजित् एवं मैं। हम लोग हैं, अभी हैं, पृथ्वी पर हैं।

(अमल-विमल-कमल ऊबकर उठ खड़े होते हैं। ज़ोर-ज़ोर से घंटी बजाते हैं, किंतु उनके ऊपर अँधेरा-सा हो आया है। लेखक पर तीव्र प्रकाश पड़ रहा है।)

मैं विभक्त, मैं अनुखंडित हूँ
चूर-चूर कण-कण से निर्मित जटिल इकाई एक
जी रहा, और जीऊँगा।
बूढ़ी सदी आज भी बैठी
सुनने को कुछ गान
खोलकर कान चतुर्दिक्
ध्वंस-भ्रंश पृथ्वी है फिर भी
चली जा रही
अपराजिता अजेय निरन्तर।

(अचानक प्रकाश बुझ जाता है। अँधेरे में यवनिका गिरती है। दबे किन्तु स्पष्ट सम्मिलित स्वर में कविता-पाठ चलता है।)

बूढ़ी सदी आज भी बैठी
सुनने को कुछ गान
खोलकर कान चतुर्दिक्
ध्वंस-भ्रंश पृथ्वी है फिर भी
चली जा रही
अपराजिता अजेय निरन्तर।

द्वितीय अंक

(एक ढंग से चार टेबुल-कुर्सियाँ लगी हैं। एक खाली चौखट। उसके पीछे एक बड़ी कुर्सी और बड़ा टेबुल, टेलीफोन। लेखक टेबुल-कुर्सी झाड़ रहा है—झाड़ क्या रहा है पंखों के झाड़न से ज़रा-ज़रा छूता जा रहा है, बस। उसके चेहरे या वस्त्र में कोई परिवर्तन नहीं है। झाड़ना पूरा करके सामने आता है।)

लेखक : घर से स्कूल। स्कूल से कालेज। कालेज से दुनिया। दुनिया एक ऑफ़िस है। इसी ढंग का एक ऑफ़िस। यहाँ पर बहुत-से काम होते हैं, बड़े ज़रूरी-ज़रूरी भी। यहाँ बहुत-से लोग काम करते हैं। अमल-विमल-कमल-इन्द्रजित्।

(अमल और विमल का प्रवेश)

अमल : आठ-बावन वाली ट्रेन आज दस मिनट लेट आई।

विमल : सियालदह में आज ट्राम रुक जाने के कारण ट्रैफिक जाम हो गया।

(कमल एवं इन्द्र का प्रवेश। अमल-विमल बैठते हैं।)

कमल : नौ-तेरह की गाड़ी आज भी नहीं पकड़ पाया।

इन्द्र : दो बस छोड़नी पड़ीं, पैर रखने तक की जगह नहीं थी।

(कमल-इन्द्र बैठते हैं।)

अमल : (विमल से) लड़का कैसा है ?

विमल : कुछ अच्छा है। (कमल से) लड़की भर्ती हुई ?

कमल : कहाँ हुई ? (इन्द्र से) कलम मिली ?

इन्द्र : ना। पाकेटमारी हो गई।

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

अमल : (जरा ज़ोर से) हरीश !

लेखक : कहिए।

अमल : एक गिलास पानी दो।

विमल : (ज़ोर से) हरीश।

लेखक : कहिए।

विमल : पान ले आओ, और ज़र्दा भी।

कमल : (ज़ोर से) हरीश।

लेखक : कहिए।

कमल : दो सिगरेट भी—कैंची।

इन्द्र : (ज़ोर से) हरीश।

लेखक : कहिए।

इन्द्र : यह चिट्ठी डाक में डाल देना।

(लेखक अपनी जगह से हिलता नहीं। ये लोग भी उसे पैसा या चिट्ठी देते नहीं। यहाँ तक कि उसकी ओर देखा तक नहीं।)

अमल : पाकेटमारों का तो ऐसा उपद्रव शुरू हुआ है कि बस, कुछ पूछो मत। उस दिन धर्मतल्ला की ट्राम में मौलाली का स्टापेज

छोड़ते ही···

विमल : होमियोपैथी दवा करना चाहते हो तो कन्हाई भट्टाचार्य को दिखाओ। हमारे बहनोई को क्रानिक डिसेन्ट्री हुई थी···

कमल : तीसरी क्लास में भर्ती होगी और उसके लिए एडमिशन टेस्ट। वा···वा। अंग्रेज़ी, बँगला और गणित और उसके ऊपर से कहा कि वर्थ सर्टिफ़िकेट दिखलाए बिना उम्र···

(अचानक लेखक बड़े रोब से बड़े टेबुल के पास जाता है। अमल-विमल-कमल और इन्द्र तनिक उठकर माथा खुजलाते हुई बैठ जाते हैं। लेखक के कुर्सी पर बैठते ही टेलीफोन की घण्टी बजती है।)

लेखक : हैलो···हैलो···यस···यस····आर्डर···चालान·····डेलिवरी फिफ्टीन पर्सेण्ट···यस···यस···बाई।

('इन' से एक के बाद एक कई फ़ाइल लेकर 'आउट' में रखता है। फिर 'आउट' से 'इन' में। अमल जाकर एक फाइल पर सही करवाकर लौटता है, फिर विमल। फिर कमल। फिर इन्द्र। फिर फोन।)

लेखक : हैलो···हैलो···यस···यस आर्डर····चालान···डेलिवरी··· फिफ्टीन पर्सेण्ट···यस···यस···बाई।

(फ़िर 'इन'से 'आउट' में फाइल डालता है।)

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

कमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

(लेखक भीतर से आकर पुनः पंखवाला झाड़न लेकर अपने स्टूल पर बैठ जाता है। वे सब और ज़ोर से पुकारते हैं।)

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

कमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

(लेखक उठकर एक-एक करके सबके पास जाता है।)

लेखक : कहिए। कहिए। कहिए। कहिए।

अमल : विमल बाबू।

(लेखक अमल की फ़ाइल विमल को देता है। विमल उसे रख-कर लेखक को एक दूसरी फ़ाइल देता है।)

विमल : कमल बाबू।

(लेखक विमल की फ़ाइल कमल को देता है।)

कमल : निर्मल बाबू।

लेखक : निर्मल बाबू तो रिटायर कर गये, सर !

कमल : ओ।···इन्द्रजित् बाबू।

(लेखक कमल की फ़ाइल इन्द्रजित् को देता है।)

इन्द्र : अमल बाबू।

अमल : विमल बाबू।

विमल : कमल बाबू।

कमल : इन्द्रजित् बाबू।

(इस तरह तीन बार वही बात दुहराई जाती है। हर बार पहली बार से अधिक तीव्र गति से। अन्तिम बार लेखक फिरकी-सा नाचने लगता है। घण्टी बजती है। लेखक भीतर जाता है। बड़े साहब का आदेश लेकर बाहर आता है।)

अमल : हरीश।

विमल : हरीश।

कमल : हरीश।

इन्द्र : हरीश।

लेखक : बड़े साहब के लिए चाय लाने जा रहा हूँ, सर।

अमल : ओ !

विमल : ओ।

कमल : ओ।

इन्द्र : ओ।

(लेखक चाय लेने जाने के बजाय घूमकर सामने आ जाता है।)

लेखक : फ़ाइल के बाद चाय। फिर फ़ाइल। फिर टिफिन। फिर फ़ाइल। फिर चाय। फिर फ़ाइल। फिर ट्राम-बस-ट्रेन। इससे भी बड़े ऑफ़िस हैं—वहाँ फ़ाइल, फिर टी—फिर फ़ाइल। उसके बाद हिन्दुस्तान—फ़ियाट—स्टैण्डर्ड।

अमल : हैलो घोष, ओल्ड बॉय, आज क्लब जा रहे हो ?

विमल : न, आज घर जाना होगा। मिसेज़ ने आज अपनी पुरानी फ्रेंड्स को पार्टी दे रखी है।

कमल : हैलो राय, ओल्ड बॉय, गाड़ी गराज से निकली ?

इन्द्र : कुछ पूछो मत। क्लच प्लेट जल गई है। टैक्सी की भी इतनी बुरी हालत है, सुबह नौकर पूरे ४५ मिनट लगाकर लौटा।

(लेखक इस बीच भीतर बड़े साहब के टेबुल पर बैठता है। इनकी बात पूरी होते ही फोन)

लेखक : हैलो—हैलो—यस—बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स—कान्फ़रेंस बजट—एनुअल रिपोर्ट—यस—यस—यस बाई। मिस मलहोट्रा।

(मानसी शार्टहैंड की कापी लिये आती है।)

मानसी : यस सर।

लेखक : (टहलते-टहलते)

With reference to above letter in connection with the above matter, I would request you—I shall be obliged if—forward us at your earliest convenience—let the office know immediately—15th ultimo—25th instant—thanking you, assur-

ing you of our best co-operation—yours sincerely—
yours sincerely.

(टेलीफोन)

हैलो—यस—यस—बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स—कान्फ़रेंस—बजट एनुअल रिपोर्ट—यस-यस—वाई—दैट्स ऑल मिस मलहोट्रा।
(मानसी का प्रस्थान। लेखक निकलकर सामने आता है।)
दैट्स ऑल मिस मलहोट्रा। दैट्स ऑल लेडीज़ एंड जेंटिलमैन। दैट्स ऑल।

अमल : दैट्स ऑल।

विमल : दैट्स ऑल।

कमल : दैट्स ऑल।
(सब कोरस में दैट्स ऑल बोलते हैं। इन्द्र चुप रहता है। इन्द्र को चुप देखकर तीनों पहले रुक जाते हैं फिर एक साथ जोरों से हँस पड़ते हैं।)

अमल : बक अप, ओल्ड बॉय।

विमल : चियरिओ, ओल्ड बॉय।

कमल : ऑल द वेस्ट, ओल्ड बॉय।
(एक-एक करके इन्द्र की पीठ को थपथपाते हुए तीनों चले जाते हैं। इन्द्र बैठा रह जाता है। लेखक घूमकर पीछे जाता है और झाड़ू देने लगता है। इन्द्र अन्यमनस्क भाव से फ़ाइल देखता है।)

लेखक : कुछ खोज रहे हैं, सर ?

इन्द्र : आँ ? हाँ, खोज रहा हूँ।

लेखक : क्या ?

इन्द्र : कुछ और।

लेखक : क्या ?

इन्द्र : आँ···नहीं, कुछ नहीं···कुछ नहीं। इसके सिवा और कुछ नहीं है ?

लेखक : मेरी समझ में ही नहीं आया, सर, कि आप क्या खोज रहे हैं ?

इन्द्र : हरीश, कुछ भी तो नहीं मिल रहा है। छोड़ो···हटाओ। कल सुबह यह फाइल अमल बाबू के टेबुल पर रख देना, यह विमल बाबू को देना और यह कमल बाबू को। और इस पर बड़े बाबू का दस्तखत होगा। मैं कल नहीं भी आ सकता हूँ।

लेखक : आपकी तबियत खराब है, सर ?

इन्द्र : तबियत ? हाँ, कल तबियत खराब हो जा सकती है। अच्छा, मैं चला।

(इन्द्र का प्रस्थान)

लेखक : अमल गया—विमल गया—कमल भी चला गया। केवल इन्द्रजित् बैठा सोच रहा है। इन्द्रजित् भी चला गया। मैं बैठा सोच रहा हूँ···मैं···

मैं बैठा हूँ सोच रहा
बस सोच रहा हूँ।
मैं हूँ खंडित एक उपकथा
एक शून्य, जो अभरणीय है।
जीवन मेरा ऐसे ही विलीन हो रहा।
(फिर भी अर्द्ध-चेतना लेकर
आती है क्यों मधुर मुखरता ?)

चूर्ण हुई पृथ्वी के कण-कण
मिले धूल में
जिन्हें समय का सूप निरन्तर
फटक रहा है
सार और निस्सार देखने।
पर क्या जीवन-बीज छिपा

इन धूलि कणों में ?

छोड़ो भी, क्या करना हमको
है भविष्य के बिखरे कण को
जोड़-बटोर सृजन करने की
इच्छा मन में पनपाने से ।
(मिट्टी अब यह बहुत पुरानी

सूना नभ—है व्यर्थ कल्पना
नये सृजन का स्वप्न देखना
सभी निरर्थक ।)

मैं बैठा हूँ सोच रहा
अब भी वैसे ही सोच रहा हूँ—
मनुज एक खण्डित अपूर्णता ।
फिर भी मन क्यों बार-बार
है खोज रहा, है सोच रहा
उस पूर्ण मनुज की बात
आज भी ?

(मौसी का प्रवेश)

मौसी : तू यहाँ बैठा है ? और खोजते-खोजते मेरे प्राण निकल गए । यहाँ बैठा क्या कर रहा है ?

लेखक : सोच रहा हूँ ।

मौसी : इतना क्या सोचता रहता है, मैं भी तो सुनूं ?

लेखक : सोचता हूँ, हमलोग कौन हैं ?

मौसी : इसमें सोचने की क्या बात है ? तुमलोग तुमलोग हो और क्या ?

लेखक : ठीक ही तो है, हमलोग हमलोग हैं, यह तो मेरी अकल में ही नहीं आया था । पर हम लोग क्या हैं ?

मौसी : लो, इसकी बातें सुनो । हमलोग क्या हैं ? तुमलोग सब हीरे

की कनी जैसे लड़के हो। अच्छी तरह तुमलोगों ने इम्तहान पास किया है, अच्छी-अच्छी नौकरी पर लगे हो।

लेखक : ठीक कह रही हो, मौसी। हीरे की कनी। कनी, माने टुकड़ा हूँ, यहाँ तक तो मैं भी पहुँच पाया था, पर हीरे की कनी हूँ यह खोपड़ी में ही नहीं घुसता था।

मौसी : किस खामखयाली में डूबे रहते हो?

लेखक : सच, खामखयाली ही तो है। तुमने फटाफट मेरे दो प्रश्नों का जवाब दे दिया—अब एक प्रश्न का और दो तो। पर यह उतना आसान नहीं है।

मौसी : क्या?

लेखक : हमलोग क्यों हैं?

मौसी : क्यों हैं, माने?

लेखक : माने यही कि हमलोग हैं क्यों?

मौसी : बलैया लूं···वाह रे···होंगे क्यों नहीं? तुम लोगों के होने से किसका कलेजा जल रहा है, ज़रा मैं भी तो सुनूं।

लेखक : उहुँ···हुआ नहीं। यह जवाब लॉजिकल नहीं हुआ।

मौसी : कौन तेरी लॉजिक का उधार आये बैठा है? जितनी सब अल-क्षणी बातें। ब्याह न करने से ही ऐसी फालतू बातें दिमाग़ में आती हैं।

लेखक : इसके बीच में ब्याह की बात कहाँ से टपक पड़ी?

मौसी : नहीं, ब्याह की बात क्यों आएगी? आएगी तो यह सब क्यों, कौन, क्या की। तू ब्याह क्यों नहीं करता, इसका जवाब मुझे दे?

लेखक : बड़ा कठिन प्रश्न है मौसी। ब्याह क्यों करूं, यही सोचते-सोचते तो प्राण निकले जा रहे हैं।

मौसी : लो भला, इसकी बातें सुनो। ब्याह क्यों करूं। सभी करते हैं, फिर तू ही क्यों नहीं करता?

लेखक : बस—मिल गया उत्तर। सभी करते हैं।
छींको क्यों तुम ? खाँसो क्यों तुम ?
मधुर-मधुर मुसकाओ क्यों तुम ?
लेते देख जम्हाई उसको
चुटकी तुरत बजाओ क्यों तुम ?
सब करते हैं इसीलिए तुम भी करते हो ?

मौसी : लो, यहाँ तो कविता शुरू हो गयी। मैं चली।

(लेखक रास्ता रोक लेता है।)

कविता का सुन नाम दौड़कर भागीं तुम क्यों ?
ऊँचे स्वर में छेड़ रेडियो रखती तुम क्यों ?
और दाल में मुट्ठी भर मिर्चा देतीं क्यों ?
सब करते हैं, इसीलिए तुम भी करती हो ?

मौसी : लो, दाल में मुट्ठी-भर मिर्चा मैंने कब डाला ?

लेखक : समय हुआ यह देख दौड़ते ऑफ़िस क्यों तुम ?
छुरी से काटतीं सदा तरकारी क्यों तुम ?
क्यों देती हो तेल दूसरे के चरखे में ?
सब करते हैं इसीलिए तुम भी करती हो ?

मौसी : क्या पागलपन करते हो, मेरी तो समझ में नहीं आता। ब्याह हो जाता तो यह सारा पागलपन दो दिनों में रफूचक्कर हो जाता।

(मौसी का प्रस्थान)

लेखक : विवाह। जन्म, विवाह और मृत्यु। जन्म के बाद विवाह, फिर मृत्यु। बहुत दिनों पहले मैंने एक बड़ी सुन्दर कहानी पढ़ी थी—पता नहीं आपलोगों ने पढ़ी है या नहीं। कहानी का अधिकांश तो भूल गया हूँ फिर भी···। एक राजकुमार था और एक राजकुमारी। बहुत-से झंझट झमेलों के बाद—उसके बाद ही तो असल कहानी शुरू होती है—दोनों सुख से राजपाट भोगने

लगे। राजपाट या घर-गृहस्थी क्या भोगने लगे, ठीक से याद नहीं। पर हाँ दोनों बड़े सुख से रहने लगे, यानी इतने अधिक सुख से कि उसे लेकर कहानी और आगे बढ़ ही नहीं सकी।

(नेपथ्य से शंखध्वनि। मंच के बीच में मानसी सिर पर साड़ी का पल्ला रखे सलज्जा नववधू-सी आकर खड़ी होती है।)

विवाह। एक पुरुष और एक नारी। दम्पती—जम्पती—जायापति। सीधे-सादे ढंग से कहने का मतलब दूल्हा-दुल्हन।

(अमल का प्रवेश—नये विवाह का-सा संकोच)

अमल : ज़रा सुपारी देना तो।

मानसी : आले पर रखी है। ले लो न।

अमल : न जाने कहाँ रखी है, मुझे नहीं मिलेगी।

मानसी : अहा, नहीं मिलेगी। इतने दिनों तक कौन खोजकर दिया करता था, ज़रा सुनूं ?

अमल : इतने दिनों कोई मेरा था क्या ?

मानसी : चुप रहो, कोई सुन लेगा।

अमल : सुन लेगा—तो फिर चुपचाप कानों में बोलूं—

मानसी : क्या करते हो ? जाओ, तुम इस कमरे से जाओ। न जाने कब कौन आ पड़े।

(अमल का प्रस्थान)

लेखक : दम्पती—जम्पती—जायापति—माने इसके बाद पति-पत्नी।

(मानसी का घूंघट खिसक चुका है—स्वाभाविक गृहिणी हो गयी है। विमल का प्रवेश। हाथ में अखबार है—कुर्सी पर बैठकर पढ़ना शुरू करता है। मानसी पास आती है।)

मानसी : कोई खास खबर है ?

विमल : एँ ?···नहीं। वही सब···

मानसी : मैंने सोचा शायद दुनिया में कुछ बहुत बड़ी बात हो गयी है।

विमल : क्यों, क्या हुआ ?

मानसी : कब से अखबार लिए बैठे हो, सिर तक नहीं उठाया है तुमने।

विमल : नहीं—ऐसे ही ज़रा देख रहा था (अखबार रखकर) हां बोलो, क्या कह रही थीं ?

मानसी : खास कुछ नहीं। आज शाम को क्या कर रहे हो ?

विमल : क्यों ?

मानसी : ऐसे ही। ज़रा बाहर निकलने का मन था।

विमल : पर···आज तो मेरे ऑफ़िस में एक आदमी रिटायर कर रहे हैं सो फेयरवेल मीटिंग है। कहाँ चलना चाह रही थीं ?

मानसी : नहीं, कहीं नहीं।···दाढ़ी नहीं बनाओगे ? नौ बजा।

विमल : नौ ? माई गॉड।

(विमल का प्रस्थान)

लेखक : दम्पती—जम्पती—जायापति माने मियाँ-बीबी।

(कमल का प्रवेश)

मानसी : अच्छा, तुम्हारा दिमाग़ ठीक है या नहीं ? मुन्ना को बुखार था, देखकर गये थे, फिर भी रात दस बजे लौटने की फ़ुर्सत मिली ?

कमल : बार्ली ले आया हूँ। यह लो।

मानसी : हाँ ले तो आ रहे हो बार्ली, पर रात दस बजे। पहले की ले आई खत्म नहीं हो गई ? कुछ खयाल था कि मुन्ना क्या लेगा ?

कमल : एकदम खत्म हो गयी थी ?

मानसी : जो ज़रा-बहुत बची थी वही जोड़-बटोरकर बना दी थी।

कमल : अब कैसा है ?

मानसी : निन्यानबे है। मुसम्मी नहीं लाए ?

कमल : यहाँ का फलवाला चोर है, रुपये में चार देता है। कल बाज़ार से ला दूंगा।

मानसी : चलो, हाथ-मुंह धोओ। मैं खाना परोसती हूँ।

(दोनों का अलग-अलग दिशाओं में प्रस्थान)

लेखक : दम्पती—जम्पती—जायापति—दूल्हा-दूल्हन, पति-पत्नी

मियाँ-बीवी—अमल-विमल-कमल एवं इन्द्रजित्।

(इन्द्रजित् का प्रवेश)

लेखक : अरे, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : अरे तुम ! कितने ताज्जुब की बात है। तुमसे यहाँ ऐसे मुलाकात हो जायेगी, सो तो सोचा ही नहीं था।

(दोनों जोर से कर-मर्दन करते हैं।)

लेखक : ओ, कितने सालों बाद तुमसे भेंट हुई।

इन्द्र : हाँ, सात साल हुए होंगे।

लेखक : इतने दिनों तुम कहाँ थे ? भोपाल में ही।

इन्द्र : नहीं। (भोपाल की नौकरी तो सालभर बाद ही छूट गयी) उसके बाद बहुत जगह घूमता रहा। बम्बई, जालन्धर, मेरठ, उदयपुर—बदली वाली नौकरी मिल गयी है, यहाँ से वहाँ चक्कर काट रहा हूँ।

लेखक : यही तो तुम चाहते थे।

इन्द्र : यही चाहता था ?—पता नहीं।

लेखक : वाह। वह पेंगुइन, कंगारू, एस्किमो—सब भूल गये ?

इन्द्र : ओ ! सरल भूगोल परिचय ? तुम्हें अभी तक याद है ?

लेखक : क्यों, तुम्हें भूल गया ?

इन्द्र : नहीं, भूला तो नहीं हूँ, पर लगता है अब दृष्टि बदल गयी है। उस दिन पाकिट में एक रुपया बारह आने की पूंजी लेकर हावड़ा छोड़ देता तो कैसा लगता, पता नहीं। आज लगता है, भूगोल से बाहर पृथ्वी नहीं है, कम-से-कम इस देश में तो नहीं ही।

लेखक : विदेश में ?

इन्द्र : विदेश तो गया नहीं, वहाँ की बात कैसे कहूँ ? मलाया की एक नौकरी के लिए इंटरव्यू दिया था पर मिली नहीं।

लेखक : मिलने से जाते ?

इन्द्र : हाँ, क्यों नहीं ?

लेखक : लगता है अभी शादी नहीं की है ?

इन्द्र : समय ही कहाँ मिला ? और तुमने ?

लेखक : बस, एक-सी ही गति है।

इन्द्र : और सबका क्या हालचाल है ?

लेखक : सब माने ?

इन्द्र : अमल-विमल-कमल।

लेखक : सब ठीक ही हैं, नौकरी कर रहे हैं, गृहस्थी चला रहे हैं।

इन्द्र : तुम्हारी बातों से तो नहीं लगता कि सब ठीक हैं ?

लेखक : नहीं···ठीक ही हैं। पर मुझे उनसे कोई ईर्ष्या नहीं है। तुम्हें होती है ?

इन्द्र : क्या जाने ? पता नहीं।

लेखक : मानसी का क्या हालचाल है ?

इन्द्र : मानसी···? अरे हाँ, तुम तो उसे मानसी ही कहते हो न। ठीक है।

लेखक : कहाँ है ?

इन्द्र : (हँसकर) माने, जानना चाहते हो न कि शादी की है या नहीं ? नहीं, नहीं की। हजारीबाग में एक स्कूल में नौकरी करती है।

लेखक : (ज़रा देर रुककर) बस, और कोई समाचार नहीं है ?

इन्द्र : और क्या समाचार जानना चाहते हो ?

लेखक : तुम जो भी बतलाना चाहो।

इन्द्र : (हँसकर) सचमुच और कोई समाचार नहीं है। बतलाने लायक दुनिया में कुछ घटता ही कहाँ है। मैं नौकरी करता हूँ—वह नौकरी करती है। मैं चिट्ठी लिखता हूँ—वह जवाब देती है। साल में एक बार मुलाकात होती है। हम दोनों प्लान करके छुट्टी लेकर कलकत्ता में भेंट करते हैं। बस, इतना ही तो समाचार है।

कलेख : तुम लोग विवाह करोगे ?

इन्द्र : नहीं ही करूँगा, ऐसा तो तै नहीं किया है पर हाँ अभी तक किया नहीं है, यह सच है।

लेखक : विवाह कर क्यों नहीं डालते ?

इन्द्र : पता नहीं। मैं इसका कोई कारण नहीं वतला सकता। संभव था पास होने के वाद बिना कुछ सोचे-विचारे एक दिन कर लेता तो कर लेता। तब तो सोचता-विचारता नहीं था। वहाँ उसी मैदान में बैठकर न जाने कितनी बातें की हैं, प्लान किया है। और ऐसे ही एक दिन तर्क करते-करते न जाने क्या कैसे हो गया कि···

(मानसी का प्रवेश। आकर पास बैठ जाती है—इन्द्र भी उसके पास बैठता है। लेखक एक कोने में अँधेरे में चला जाता है।)

मानसी : इन्द्र, मुझसे नहीं होगा।

इन्द्र : क्या नहीं होगा ?

मानसी : तुम क्यों इस तरह ज़िद कर रहे हो ? मुझे कुछ समय दो।

इन्द्र : समय-समय-समय। आज छ: महीने से बस तुम एक ही बात कह रही हो—समय दो।

मानसी : मैं क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ। तुम्हारे जितना साहस मुझमें नहीं है।

इन्द्र : साहस मत कहो। कहो कि इच्छा नहीं है।

मानसी : इच्छा होने से क्या सब-कुछ किया जा सकता है ?

इन्द्र : सब-कुछ की बात मैं नहीं जानता, पर हाँ, विवाह किया जा सकता है, इतना जानता हूँ।

मानसी : मर्द लोग जो कुछ···

इन्द्र : बस-बस, मुझे पता है। यही न कि मर्द जो कुछ कर सकते हैं औरतें नहीं कर पातीं। औरतें खाली सोच सकती हैं, मान सकती हैं और समय चाह सकती हैं।

मानसी : क्यों बेकार गुस्सा होते हो ?

इन्द्र : (रुककर) नहीं, गुस्सा नहीं हो रहा हूँ! ...कल मैं भोपाल चला जा रहा हूँ, इसीलिए आज इस बारे में जानना चाहता था।

मानसी : भोपाल चले जाने से ही सब-कुछ शेष हो जाएगा ?

इन्द्र : (रुककर) पता नहीं।

मानसी : इन्द्र।

इन्द्र : मुझे कुछ पता नहीं मानसी, सच कहता हूँ।

मानसी : (धीरे) तब फिर पहले पता कर लो। पहले भोपाल जाकर देखो कि क्या होता है ?

इन्द्र : अब कौन गुस्सा हो रहा है ?

मानसी : यह गुस्सा नहीं है इन्द्र। मैं बहुत सोच-समझकर कह रही हूँ—ज़िन्दगी बच्चों का खिलवाड़ नहीं है।
(इन्द्र देखता रह जाता है। अंधकार। मानसी चली जाती है। पुनः लेखक पर प्रकाश पड़ता है। इन्द्र उठकर पास आता है।)

इन्द्र : हम दोनों जीवन को लेकर बच्चों का खिलवाड़ नहीं कर सके। बहुत सोच-विचार किया। बहुत हिसाब-किताब किया। अभी भी करता रहता हूँ। लगता है सचमुच कहीं जीवन बच्चों का खिलवाड़ ही न हो उठे। जीवन—महामूल्यवान जीवन। अखबार पढ़ते हो ?

लेखक : हाँ, बीच-बीच में।

इन्द्र : न जाने कब एक खबर पढ़ी थी। अमरीका के सारे अणु-अस्त्र और कुछ नहीं, स्विच का खिलवाड़ भर है। कहीं भूल से आणविक युद्ध न शुरू हो जाये इसीलिए स्विच में बहुत तरह के ऑटोमैटिक इंटरलिंकिग सिस्टम रखे गये हैं—वैसे ही जैसे रेल के सिगनल में होते हैं। मान लो, कभी भूल से कुछेक एटम और हाइड्रोजन बम के गिरने से सारी पृथ्वी नष्ट हो जाए तो ?

सोच सकते हो ?

लेखक : तुम कहना क्या चाहते हो ?

इन्द्र : खास कुछ नहीं। इसी मूल्यवान जीवन की बातें जिसे लेकर इतनी विवेचना, इतना हिसाब-किताब होता रहता है।

लेखक : मतलब यह कि तुम तो विवाह करना चाहते हो पर मानसी ही मन नहीं तय कर पा रही है ?

इन्द्र : नहीं, ऐसी बात नहीं है, कम-से-कम फिलहाल तो नहीं। हर समय क्या कोई एटमबम की बात सोच सकता है। रात में तारों-भरे आकाश की ओर यदि निहारो और किताबों में पढ़े ज्योतिष शास्त्र की बात यदि सोचो तो सारे सौर-जगत् में इस छोटी-सी पृथ्वी का कुछ महत्त्व लगता है ? कीड़े-मकोड़ों जैसे इन मनुष्यों का कोई मूल्य है ? फिर भी यही बात यदि हर समय सोची जाए तो क्या जिन्दा रहा जा सकता है ?

लेखक : फिर भी तो तुम सोचते रहते हो ?

इन्द्र : क्या करूँ, सोचे बिना रहा नहीं जाता। फिर अपने जीवन को बहुत विराट बनाकर भी मैं सोचता हूँ। मैं भूल जाता हूँ कि महाकाल के निकट मेरा जीवन क्या है···एक पल मात्र ही तो। मैं यह भी भूल जाता हूँ इस अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में मेरा अस्तित्व धूल के एक कण से अधिक महत्त्वहीन है। वरन् मैं सोचता हूँ कि इस दुनिया में मेरे जीवन की तरह मूल्यवान और कुछ है ही नहीं।

लेखक : इस तरह भूलना भी प्रकृति का वरदान समझो···मनुष्य इसी हथियार के भरोसे बच पाता है।

इन्द्र : यह हथियार पूरा नहीं पड़ता। ज्ञानवृक्ष का फल। यह तारों-भरा आकाश सब गोलमाल कर देता है, सब गोलमाल कर देता है।

तुम, मैं, मानसी, कमल, विमल, अमल···

(वाद्यसंगीत में इन्द्र का स्वर डूब जाता है। सारे मंच पर अंधकार हो जाता है। प्रकाश का एक पुंज लेखक एवं इन्द्र के ऊपर पड़ता है और दूसरी क्षीण रेखा पीछे खड़ी मानसी के ऊपर। दूसरी ओर हलके-से प्रकाश में अमल, विमल और कमल की छाया-मूर्तियाँ। वाद्यसंगीत एक गम्भीर कविता-पाठ के स्वर में परिणत होता है।)

कंठस्वर : धरती मिलती है सागर में
ओ' सागर जा दूर क्षितिज में लीन हो रहा
उस विस्तीर्ण सौर-मंडल में
इस पृथ्वी का तुच्छ ठिकाना···
कहाँ खो गया ?
पृथ्वी का अस्तित्व—दो क्षणों का यह जीवन
क्या है ?—एक विलास मात्र
इस सतत उच्छरित जीवनधारा
और काल की अनंत गति का।
(जीवन का इतिहास, क्षणिक
आकस्मिक संयोजन भर तो है।
धरती का यह अर्थहीन नव-स्पंदन
केवल दान कुछेक क्षणों का ही तो।
उस अनन्त गणना में मैं हूँ
मात्र धूल के कण-सा
संज्ञाहीन, तुच्छ, साधारण।
ठीक युधिष्ठिर ने समझा था
वक रूपी उन धर्मराज के प्रश्नों को···
जीवन का मर्म वही था।)
जीवन की इस सतत प्रवाहित
उच्छल धारा की गति को

है मृत्यु कर रही वेताला—
यह कहना कितनी बड़ी भूल है ?
एक मृत्यु क्या कर सकती है
प्रखर प्राणधारा को बाधित ?
(फिर भी मानव मूढ़
सोचता इसी तरह है।
मानव के इतिहास ग्रन्थ में
नहीं लिखी है गयी
और कोई घटना विस्मयकर इससे)

(स्तब्धता। एकदम अँधेरा हो जाता है--केवल मानसी पर पड़ने वाला प्रकाश थोड़ा और तीव्र हो जाता है)

मानसी : फिर भी मैं हूँ कीट अधम-बेशर्म।
तुष्ट चतुर्दिक् फैले जीवन तन्तु-जाल।
विस्मृत कर बैठा मैं गहरी जटिल समस्या
गूढ़ तत्व आलोचन सब-कुछ।
किन्तु अनन्त घोषणा करता
उद्धत प्राणशक्ति से भरकर
तुच्छ धूल कण के मुहूर्त की।

(मानसी पर पड़नेवाला प्रकाश बुझ जाता है। फिर धीरे-धीरे प्रकाश होता है तो मंच पर बीच में पाद-प्रदीप के पास लेखक अकेला दिखलाई पड़ता है।)

लेखक : प्राणों का उद्धत अधिकार। पर किसके प्राण ?
इन्द्रजित्, मानसी, मैं, और कौन ? अमल-विमल-कमल।

(अमल का प्रवेश)

अमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

लेखक : ठीक।

अमल : अभी भी लिखते-विखते हो या छोड़ दिया ?

लेखक : बीच-बीच में लिख लेता हूँ।

अमल : तुम्हारा वह नाटक पूरा हुआ ?

लेखक : ना। तुम्हारा क्या हालचाल है ?

अमल : अच्छा नहीं है भाई।

लेखक : क्यों, क्या हुआ ?

अमल : अरे, इस ए० बी० सी० कम्पनी में नौकरी करके तो जिंदगी ही बरबाद हो गई। (सीनियर असिस्टेंट की पोस्ट पर काम करते छः साल हो गये)—छः साल का अनुभव मुझे और असिस्टेंट मैनेजर की पोस्ट पर ले आये बाहर से किसी एक मद्रासी को।

लेखक : अच्छा ?

अमल : बस पूछो मत। (आजकल मद्रासियों का ही बोलबाला है। बंगाली बंगालियों के ही हाथों मरेंगे। मैंने ही भूल की, उस समय पी० आर० क्यू० कम्पनी का ऑफ़र नहीं लिया। सोचा, यहाँ भी तो प्रमोशन हुआ जा रहा है क्यों फालतू में इधर-उधर)···सच कवि, जीवन से विरक्ति हो गयी।

लेखक : घर में सब लोग मजे में हैं ?

अमल : मज़े में क्या हैं ! ऐसी हालत में कहाँ तक चैन से रहा जा सकता है। (छः साल हो गए—सीनियर असिस्टेंट के सीनियर असिस्टेंट) अच्छा भाई चलूँ, ज़रा जल्दी है।

(अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश)

विमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

लेखक : ठीक।

विमल : अभी भी लिखते-विखते हो या छोड़ दिया ?

लेखक : बीच-बीच में लिखता हूँ।

विमल : तुम्हारा नाटक पूरा हुआ ?

लेखक : ना। तुम्हारा क्या हालचाल है ?

विमल : ठीक ही है। हमलोगों के फर्म को हैवी इंजीनियरिंग में अच्छा कान्ट्रैक्ट मिला है। रांची ट्रांसफर हो गया है, कल जा रहा हूँ।

लेखक : फैमिली को ले जा रहे हो ?

विमल : हाँ, क्वार्टर दिया है। और फैमिली माने तो खाली मिसेस। लड़के को ला मार्टीनियर में भर्ती करा दिया है। रांची में कौन जाने कैसा स्कूल मिले।

लेखक : तो मतलब अच्छे ही हो ?

विमल : हाँ, चलता है और क्या ? अच्छा भाई चलूं। जरा न्यू मार्केट जाना है—कुछ लास्ट मिनट शापिंग करनी है। तुम उधर जाओगे क्या ? तो चलो, लिफ्ट दे सकता हूँ।

लेखक : नहीं भाई, मुझे अभी नहीं जाना है।

विमल : अच्छा भाई, सो लांग।

(विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश)

कमल : अरे कवि क्या हालचाल है ?

लेखक : ठीक।

कमल : अभी भी लिखते-विखते हो ?

लेखक : ना।

कमल : हाँ भाई, इतने झमेलों में ऐसी हॉबी बनाए रखना बड़ा मुश्किल होता है। मैं भी तो माउथ आर्गन बजाया करता था पर कहाँ चालू रख सका ? (खराब होकर पड़ा है, ठीक भी नहीं करवा पाया। कैसी महँगाई है।) हाँ, तुमने इंश्योरेंस करवाया है ?

लेखक : ना।

कमल : कहते क्या हो ? नहीं भाई, यह तो ठीक बात नहीं है। एक सीक्योरिटी तो चाहिए। जिंदगी के बारे में कौन क्या कह सकता है ? इंश्योरेंस करवा डालो—कम-से-कम दस हज़ार का—

लेखक : किसके लिए इंश्योरेंस करवाऊँ ?

कमल : क्यों, व्याह नहीं किया तुमने ?

लेखक : ना।

कमल : खैर, पर करने में क्या देर लगती है ? और फिर करते साथ वाल-बच्चे। ज्यादा उम्र में बीमा करवाने से प्रीमियम रेट बहुत बढ़ जाता है। (फिर अपनी बुढ़ौती में भी तो कुछ सहारा चाहिए) कितने का करवाओगे, बता दो, मैं सब इन्तज़ाम करवा दूंगा।

लेखक : तुमने क्या नौकरी छोड़ दी ?

कमल : दिमाग़ खराब हुआ है ? आजकल के ज़माने में कोई नौकरी छोड़ता है ? पर हाँ, एक बिज़नेस की चेष्टा में हूँ। (यदि सब हिसाब-किताब ठीक बैठ गया तो नौकरी-वौकरी, बीमा की दलाली-फलाली सब छोड़ दूंगा।) अच्छा, ऐसा कोई फाय-नेंशयर तुम्हारी निगाह में है जो करीब २५ हज़ार रुपये लगा सके ? बड़ी अच्छी स्कीम है ? फॉर्टी परसेंट प्राफ़िट गारंटीड। मैं सारा हिसाब फैलाकर बता दे सकता हूँ।

लेखक : ऐसा कोई मेरी जानकारी में तो नहीं।

कमल : चिंता मत करो, कोई-न-कोई मिलेगा ही। ऐसी सोना उगलने वाली स्कीम है कि रुपया लगाने वालों की कमी न होगी। अच्छा भाई, चलूं। हाँ, तुम इंश्योरेंस की बात सीरियसली सोच देखो।

(कमल का प्रस्थान)

लेखक : (कविता)—किंतु अनन्त घोषणा करता
उद्धत प्राणशक्ति से भरकर
तुच्छ धूलकण के मुहूर्त की।

ये सब छोटे-छोटे कण हैं—इनकी दैनन्दिन जीवन की अनेक छोटी-मोटी घोषणाओं का इतिहास मेरा नाटक है।
अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्।

(इन्द्र का प्रवेश)

तुम्हारी कौन-सी अनन्त घोषणा है, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : घोषणा, माने ?

लेखक : कुछ नहीं। हाँ, मानसी से भेंट हुई ?

इन्द्र : नहीं, हुई नहीं है पर होगी। उसी मैदान में।

(इन्द्र पीछे चला जाता है।)

लेखक : उस मैदान में। उसी घने पेड़ के नीचे।

बीते दिन की अनगिन बातें
तृण तरु-तरु में गुंथी हुई हैं।
जीवन में आगमन
प्रथम यौवन का
गुपचुप मन की बातें
उस कोने में रमी हुई हैं।

इन्द्रजित् और मानसी। वे फिर से वहां बैठेंगे, बातें करेंगे।

दिन पर दिन बीते जाते हैं
मास-वर्ष की रगड़ें खा-खा
बात पुरानी पड़ जाती है
वही बात फिर-फिर आती है।
फिर भी आओ, उस कोने में
हरी-हरी दूर्वा पर बैठें
इधर-उधर की बातें करते
हम-तुम दोनों कुछ क्षण काटें

(मानसी आकर इन्द्रजित् की बगल में बैठ जाती है। बातचीत शुरू होती है। लेखक हट जाता है।)

इन्द्र : लगता है अब बहुत दिनों तक तुमसे मुलाकात न होगी।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : शायद बाहर चला जाऊँ।

मानसी : बाहर माने ? बाहर ही तो हो।

इन्द्र : और दूर।

मानसी : कहाँ ?

इन्द्र : लंदन।

मानसी : लंदन ? कोई नौकरी मिली है ?

इन्द्र : नहीं, नौकरी तो नहीं मिली है, पर अपने-आपको इस प्रवाह में छोड़ देने लायक रुपया जुट गया है। एक इंजीनियरिंग कोर्स में एडमिशन ले लिया है। पासपोर्ट वगैरह भी तैयार हो गया है। वहाँ पहुँचकर कोई नौकरी खोज लूंगा।

मानसी : न मिली तो ?

इन्द्र : मिल जाएगी।

मानसी : नहीं ही मिली तो ?

इन्द्र : कुछ-न-कुछ तो मिलेगा ही। अकेले पेट की कितनी चिन्ता।

मानसी : इस तरह तुम कब तक बहते रहोगे ?

इन्द्र : जब तक सम्भव होगा।

मानसी : तुम्हें यह सब अच्छा लगता है ?

इन्द्र : उहूँ।

मानसी : तब ?

इन्द्र : तब क्या ?

मानसी : कहीं एक जगह टिककर रहते क्यों नहीं ?

इन्द्र : टिककर रहने से ही अच्छा लगने लगेगा ?

मानसी : पता नहीं।

इन्द्र : मुझे भी नहीं पता। मानसी—सच पूछो तो अच्छा शब्द का कोई अर्थ ही नहीं होता। अच्छा लगने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मानसी : (तनिक रुककर) इन्द्र।

इन्द्र : बोलो।

मानसी : मुझसे शादी हो जाती तो तुम स्थिर होकर बैठ पाते ?

इन्द्र : पता नहीं। आज तो कुछ भी नहीं कह सकता। एक ज़माना था जब इस सम्बन्ध में कुछ कहने की स्थिति में था···

मानसी : तुम्हें मेरे ऊपर गुस्सा नहीं आता ?

इन्द्र : ना। पहले आता था पर अब नहीं। और फिर ब्याह करने से क्या होता, यह कौन जानता है। सम्भव था हमारी यह मित्रता समाप्त ही हो जाती।

मानसी : और यह भी तो हो सकता था कि इससे भी घनिष्ठ एक दूसरी मैत्री का सम्बन्ध बन जाता ?

इन्द्र : पता नहीं मानसी, कुछ पता नहीं। मैंने इस सम्बन्ध में बहुत सोचा है, मन-ही-मन न जाने कितनी उधेड़-बुन की है, पर सारी बातों का उत्तर कहाँ दे पाया हूँ। अब तो न जाने कैसी क्लांति घेरे ले रही है। बहुत-सा तर्क-वितर्क भी अच्छा नहीं लगता। कुछ करने का मन भी नहीं करता। केवल क्लांति और क्लांति। बस, मन करता है सो रहूँ। (ज़रा देर मौन रहता है।)

मानसी : चलो, थोड़ा घूमें।

इन्द्र : चलो।

(दोनों उठकर चले जाते हैं। थके कदमों लेखक का प्रवेश)

क्लांत-क्लांत—मैं बहुत क्लांत हूँ।
व्यर्थ प्रश्न यों ही रहने दो।
मिटती घनी मूक छाया में
मुझे अभी केवल सोने दो।

क्या करना है बातों का अम्बार लगाकर ?
और बताओ क्या मिलना है
बीज तर्क के यूँ फैलाकर ?

मैं विवेक से ऊब गया हूं
आज बहुत ही क्लांत हुआ हूं।
सूने निर्जन की छाया में
मुझे अकेला सोने दो बस।
(ज्ञात मुझे इस धरा गर्भ में
छिपा अभी भी जाने क्या-क्या
पर मेरी संधान-साधना, क्लांत हुई है।
धरती की जड़ता का बोझा।
अभी और है
पर मेरी प्रयत्न करने की
शक्ति आज तो क्लांत हुई है।

मृत्यु तीर पर
जीवन की आशा में बैठी
सतत प्रतीक्षा, क्लांत हुई है।)
जाओ, अपने प्रश्न साथ ले
तर्क विवेक सभी ले जाओ।

सोने दो मुझको
छाया के घोर गभीर लोक में
मुझको सोने दो—मैं बहुत क्लांत हूं।

तृतीय अंक

(एक टेवुल के तीनों ओर बैठे अमल, विमल और कमल ताश खेल रहे हैं। तीनों अपनी-अपनी बात कहकर पत्ते चलते और तीन पत्तों के वाद हाथ जीतकर ताश समेटते हैं।)

अमल : सन् १९४७ की १५ अगस्त को भारत स्वाधीन हुआ।

विमल : ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजों से हम मुक्त हुए।

कमल : अव हमें एक स्वाधीन स्वावलम्वी समाज का निर्माण करने के लिए प्रस्तुत होना है।

अमल : पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट होना ही होगा।

विमल : फ़ासिज़म संसार को विनाश के पथ पर ले जाता है।

कमल : कम्यूनिज़म मनुष्य के स्वातंत्र्य-बोध को नष्ट कर देता है।

अमल : डिमोक्रेसी के द्वारा जल्दी कुछ करना संभव नहीं होता।

विमल : डिक्टेटरशिप हर देश, हर युग में अभिशाप रही है।

कमल : आम जनता हर व्यवस्था में दुःख पायेगी।

अमल : सारे देश में अव्यवस्था और अन्याय का साम्राज्य है।
विमल : इस सरकार के किये कुछ भी न होगा।
कमल : गद्दी पर बैठकर सब एकसे हो जाते हैं। यहाँ तो सब धान बाईस पसेरी।
अमल : राजनीति गंदी चीज़ है।
विमल : अपनी तो नक्कारखाने में तूती की आवाज़ है। मेरा हाल क्या पूछते हो।
कमल : मैं ज़िन्दा बचूँगा तब न बाप-दादा का नाम चलेगा ?
अमल : प्रमोशन नहीं हुआ।
विमल : क्वॉर्टर एक़दम रद्दी है।
कमल : रोज़गार का तार ही नहीं बैठा।
अमल : घर में बीमार है।
विमल : मुन्ना इम्तहान में फेल हो गया।
कमल : बाबूजी गुज़र गये।
अमल : जितने सब हैं···
विमल : छिः छिः छिः।
कमल : धत्तेरे की।
अमल : विमल।
विमल : कमल।
कमल : अमल।
अमल : विमल।
विमल : कमल।
कमल : अमल।

(नेपथ्य से घोषणा—एवम् इंद्रजित्)

(लेखक का प्रवेश)

अमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
विमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

कमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

लेखक : कल इन्द्रजित् की चिट्ठी मिली।

अमल : अच्छा ? क्या लिखा है ?

विमल : वह तो विलायत गया था न ?

कमल : अभी लौटा नहीं ?

लेखक : परीक्षा में पास हो गया है।

अमल : वाह ! यह तो अच्छी खबर है।

विमल : बस, लौटते ही नौकरी मिल जाएगी। इंजीनियरिंग लाइन बड़ी अच्छी है।

कमल : अभी भी अपने यहाँ विदेशी डिग्री की बड़ी इज्जत है।

लेखक : क्या लिखा है, सुनोगे ?

अमल : हाँ, सुनाओ।

विमल : चिट्ठी लम्बी है ?

कमल : होने दो न।

(लेखक पत्र पढ़ना शुरू करता है। ये तीनों ताश खेलने लगते हैं। इस बार बातचीत नहीं, केवल तीन हाथ का खेल)

लेखक : कलकत्ता-भोपाल-बंबई-जलन्धर-मेरठ-उदयपुर-कलकत्ता-लंदन। सारा अतीत रथ के पहिये की तरह घूमता गया है। फिर भी ठीक पहिये की तरह नहीं। हर नया चक्कर पुराने को छोड़कर अलग चक्कर बना है, यही ट्रेजेडी रही है। जानने की सबसे बड़ी ट्रेजेडी रही है। कुछ पकड़ता हूँ, फिर सब शेष हो जाता है और फेंक देता हूँ। फिर कुछ नया पकड़ता हूँ।

फिर भी यह आशा किसी तरह नहीं टूटती कि कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ असंभव अप्रत्याशित घटकर रहेगा ही (फिर भी हर समय यह लगता है जैसे इतना ही सब-कुछ नहीं है। ऐसा लगता है जैसे कभी) कुछ ऐसा अवश्य घटित होगा जिसके तीव्र आलोक में अतीत का सब-कुछ धुंधला जाएगा। कैसा भोला

स्वप्न है—नींद टूट जाने पर भी सपने की खुमारी और नशा नहीं जाता।

(इस बीच इन्द्र आकर लेखक की बगल में खड़ा हो जाता है। अमल-विमल-कमल पूर्ववत् ताश खेले जा रहे हैं।)

इन्द्र : जो कुछ मिलने लायक था, सब पा चुका हूँ। और अब यह कटु सत्य अनुभव हो रहा है कि यह सारा पाना कितना व्यर्थ रहा है। और मिलेगा और मिलने पर उसे समेटने के लिए चार हाथ निकल आयेंगे—यह आशा भी कितनी व्यर्थ है। अतीत और भविष्य आज भी रस्सी के दो छोर हैं—विपरीत हैं सो भी इसलिए कि अभी स्वप्न का अस्तित्व बचा है, नहीं तो भविष्य को मोड़-माड़कर सहज ही अतीत की गोद में डाल दिया जा सकता है। वर्तमान भी एक धूमिल अनजाने भविष्य की ओर मुँह बाए देखता अनिर्दिष्ट-सा ही न रहकर एक दिन एक सीमाबद्ध सुनिर्दिष्ट बिंदु बन जा सकता है। कहने का मतलब—मृत्यु का वरण कर सकता है।

(मानसी ज़रा देर पहले आ चुकी है।)

मानसी : मृत्यु का वरण ?

इन्द्र : हाँ, मृत्यु का वरण। वास्तव में मृत्यु में बड़ा सुख है। न जाने कितने लोग मरकर सुख में हैं। सारे आगामी भविष्य को गत अतीत के साथ एकाकार करके परम सुखी हैं। मुझे भी तो एक-न-एक दिन इसी तरह मरना ही होगा। तो फिर अभी ही क्यों न मर जाऊँ ?

मानसी : ऐसा मत कहो। तुम जीवित रहो···

इन्द्र : जीवित रहने के लिए मनुष्य को विश्वास की ज़रूरत है—भगवान् पर विश्वास। भाग्य पर विश्वास। काम पर विश्वास। मनुष्य पर विश्वास। विद्रोह पर विश्वास। अपने ऊपर विश्वास···प्रेम पर विश्वास। इनमें से आज कौन-सा विश्वास

मुझमें बचा है, बता सकती हो ?

मानसी : जीवन पर विश्वास है न ?

इन्द्र : जीवन। जहाँ विराट् प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते वहाँ छोटी-छोटी अर्थहीन समस्याओं में उलझे रहना। कुछेक अर्थहीन दिखावा और झूठ जिसकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। फिर भी करना होगा—यही जीवन है, मनुष्य जीवन। और मैं करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में से एक हूँ। मेरे जीवन का मिथ्या करोड़ों-करोड़ों लोगों के जीवन का मिथ्या है।

मानसी : तुम करना क्या चाहते हो ?···क्या करोगे ?

इन्द्र : क्या करूँगा ? थककर चूर होकर सो रहूँगा···या सब हँसकर उड़ा दूँगा ?···शायद हँसकर उड़ा देना ही ठीक होगा। जीवन है ही एक ऐसी हास्यकर वस्तु कि हँसी रोकने का कोई अर्थ नहीं है।

(इन्द्रजित् अचानक अट्टहास कर उठता है। मानसी और लेखक अलग-अलग दिशाओं में चले जाते हैं। अमल-विमल-कमल बिना कुछ समझे-बूझे अट्टहास शुरू कर देते हैं। लेखक पुनः प्रवेश करके पाद-प्रदीप के पास आता है। दोनों हाथ उठाकर दर्शकों को रोकने की चेष्टा करता है मानो वे ही हँस रहे हों। अमल-विमल-कमल का प्रस्थान, इनकी हँसी की आवाज़ धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।)

लेखक : आप लोग इस तरह हँसिए मत, मैं आपके हाथ जोड़ता हू, अब शांत हो जाइए। सच, मुझसे नाटक नहीं बन पा रहा है। पर, मैं कितनी चेष्टा कर रहा हूँ, यह तो आप देख ही रहे हैं। अमल-विमल-कमल का नाटक ? और इन्द्रजित् ?

(मौसी का प्रवेश)

मौसी : खाना नहीं खाओगे ?

लेखक : ना।

(मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश)

मानसी : खाना नहीं खाओगे ?

लेखक : (दोनों हाथों से मुँह ढककर) तुम भी ?

मानसी : नहीं, भूल हो गई। तुम लिखोगे नहीं ?

लेखक : कैसे लिखूं ? इन्द्रजित् लौट नहीं रहा है। तीन साल में उसने मुझे तीन चिट्ठियाँ लिखी हैं, हरएक में एक ही बात।

मानसी : क्या ?

लेखक : यही कि वह चक्कर काट रहा है, घूम रहा है, घूम रहा है पर मरता नहीं। न जाने कितने अटपटे स्वप्न दिमाग में घूमते रहते हैं, पर किसी तरह मरते नहीं। बोलो, जो जीवन को वास्तव रूप में देखता है और स्वप्न समझता है, उसे लेकर नाटक कैसे लिखा जाए ?

मानसी : उसी को लेकर तो नाटक हो सकता है।

लेखक : नहीं, नहीं। जितनी बार मैं उसे घटनाचक्र में ले आता हूँ, वह उससे बाहर छिटक पड़ता है। कहता है—यह वास्तविक घटना नहीं है। जितनी बार उससे कोई बात कहलवाना चाहता हूँ, वह उस बात की परिधि से बाहर जा खड़ा होता है। कहता है—यह वास्तविक बात नहीं है। उसने बहुत-कुछ जान लिया है, ज़रूरत से ज्यादा जान लिया है।

मानसी : फिर भी वह स्वप्न देखता है।

लेखक : एक-न-एक दिन तो स्वप्नों का अंत होगा।

मानसी : हाँ, सो जानती हूँ।

लेखक : तब ?

मानसी : होने दो अंत।

लेखक : उसके बाद ?

मानसी : तब तो फिर स्वप्न के तिनके के सहारे तैर नहीं सकेगा।

लेखक : तब फिर डूब जाएगा ?

मानसी : डूब जाएगा तो डूबने दो। शायद डूबकर ही वह धरती का ठोस आधार पा सकेगा। शायद वहीं से जीवन की शुरुआत हो।

लेखक : तुमने कैसे जाना ?

मानसी : मैंने ?···मैंने क्या जाना, कुछ भी नहीं। मैं तो बेवकूफ हूँ, मैं कुछ भी नहीं जानती। मैं तो केवल विश्वास करना जानती हूँ।
(मानसी का प्रस्थान)

लेखक : विश्वास ? पाताल का विश्वास ?

(इन्द्र का प्रवेश)

इन्द्र : (कविता)

आस्तिक की दीनता लिए मैं तैर रहा हूँ।
तृण के ऊपर डाल भार सारे जीवन का, तैर रहा हूँ।
कोहरे की सादी साँसों ने
छिपा लिया है कूल किनारा।
इस प्रवास में जाना मैंने एक तथ्य है
मेघों के उस पार
स्वर्ण से मण्डित दिखता राजपाट
औ' ताराओं के पार
डूबते-उतराते स्वर्गों की छाया
सब है मिथ्या।
तुमसे विनय—
सांत्वना झूठी देना छोड़ो
मन से दूर निकाल फेंक दो
आस्था औ' विश्वास युगों का।
(स्वयं डूबकर देखो कितने गहरे में है धरती का तल।
मानव है चल
और साथ ही क्रियाशील है।
नहीं चूकता डूब लगाकर

जा पाताल पुरी तक पहुंचा
पाने को अधिकार
डोर शासन की अपने हाथों लेने)

लेखक : इन्द्रजित् ।

इन्द्र : बोलो ।

लेखक : तुम लौट आए ?

इन्द्र : हाँ ।

लेखक : कब आए ?

इन्द्र : बहुत दिन हो गए ।

लेखक : हो कहाँ ?

इन्द्र : कलकत्ता में ।

लेखक : क्या करते हो ?

इन्द्र : नौकरी ।

लेखक : ब्याह किया ?

इन्द्र : हाँ ।

लेखक : मतलब, अंत में मानसी किसी तरह ब्याह के लिए राजी हो ही गई ।

इन्द्र : ना ।

लेखक : एँ ?

इन्द्र : किसी और से ब्याह किया है ।

लेखक : किसी दूसरी से ?

इन्द्र : हाँ ।

लेखक : वह कौन है ?

इन्द्र : एक औरत ।

लेखक : नाम ?

इन्द्र : मानसी ।

लेखक : यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

इन्द्र : दुनिया में ऐसे ही होता है। न जाने कितनी मानसी आती हैं और चली जाती हैं। उन्हीं में से किसी एक के साथ विवाह होता है। फिर न जाने कितनी मानसी आती हैं और फिर चली जाती हैं। मानसी की बहन मानसी। मानसी की सहेली मानसी। मानसी की लड़की मानसी।

लेखक : वैसे ही जैसे अमल-विमल-कमल ?

इन्द्र : हाँ, वैसे ही जैसे अमल-विमल-कमल एवं इन्द्रजित्।
(मानसी का प्रवेश। सिर पर आँचल है।)
आओ तुमसे परिचय करवा दूं। मेरी पत्नी मानसी और ये मेरे पुराने मित्र, लेखक।

लेखक : नमस्कार।

मानसी : नमस्कार। आप क्या लिखते हैं ?

लेखक : जब जो लिख जाए।

मानसी : आजकल क्या लिख रहे हैं ?

लेखक : एक नाटक लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।

मानसी : मुझे सुनाएँगे ?

लेखक : ज़रूर। पूरा हो जाने दीजिए, फिर सुनाऊँगा।

मानसी : अभी कितना बाकी है ?

लेखक : ज्यादा नहीं। बस आजकल में लिखना शुरू करूँगा।

मानसी : अभी आपने शुरू ही नहीं किया है ?

लेखक : कहाँ कर पाया ?

मानसी : आपने कहा न कि पूरा होने में अधिक बाकी नहीं है।

लेखक : इस नाटक के आरम्भ और अन्त में अधिक अन्तर नहीं है। नाटक वृत्ताकार है।

मानसी : आपकी बातें समझ में नहीं आ रही हैं।

इन्द्र : समझोगी कैसे मानसी ? बातें क्या समझने के लिए होती हैं ?

मानसी : वाह, बात समझ में आने के लिए ही तो कही जाती है।

इन्द्र : वह पहले कही जाती थी। अब केवल अभ्यासवश ही कही जाती है।

मानसी : हटाओ भी। सब फालतू की बातें हैं।

इन्द्र : फालतू की हैं, यही तो मैं भी कह रहा हूँ। वह देखो...

(अमल-विमल-कमल का प्रवेश। मंच की दूसरी ओर खड़े वे बातें करते हैं।)

मानसी : वे कौन हैं?

लेखक : वे अमल—विमल—कमल हैं।

अमल : घनतंत्र—राजतंत्र—गणतंत्र।

विमल : साम्राज्यवाद—नाज़ीवाद—मार्क्सवाद।

कमल : अर्थनीति—टेण्डर—स्टेटमेण्ट।

विमल : रिपोर्ट—मिनिट्स—बजट।

कमल : मीटिंग—कमेटी—कान्फरेन्स।

अमल : सभ्यता—शिक्षा—संस्कृति।

विमल : साहित्य—दर्शन—इतिहास।

कमल : ब्रह्म—निर्वाण—भूमा।

अमल : राजकपूर—माला सिन्हा—विश्वजित्।

विमल : उम्रीगर—कृष्णन्—मिलखासिंह।

कमल : हेमन्तकुमार—एस० डी० बर्मन—लता मंगेशकर।

अमल : डॉक्टर—होमियोपैथ—कविराज।

विमल : ट्राम—बस—ट्रेन।

कमल : गरम—कूड़ा—मच्छर।

अमल : बेटा—बेटी—पत्नी।

विमल : मास्टर—ड्राइवर—बावरची।

कमल : साली—भानजे—ससुर।

मानसी : वे क्या कह रहे हैं?

इन्द्र : बातें कर रहे हैं, बातें।

(अमल-विमल-कमल हाथ-पैर हिलाते निःशब्द बात करते चले जाते हैं।)

मानसी : क्या बातें ?

इन्द्र : मुझे नहीं पता। लेखक से पूछो।

मानसी : (लेखक से) अच्छा, इसके सिवा क्या और कोई बातें नहीं हैं ?

लेखक : लगता तो है कि हैं। ज़रूर हैं।

(सामने आकर दर्शकों से पूछता है।)

इसके अलावा क्या बातें नहीं हैं ? (दर्शक निरुत्तर)
नहीं हैं ? (फिर नीरव) तब फिर मैं किसे लेकर नाटक लिखूं ?
इन सब बातों को लेकर ? ऐसे नाटक में कौन अभिनय करेगा ?
कौन देखेगा ?

(इन्द्र और मानसी जाने लगते हैं।)

इन्द्रजित्, जाना मत।

(मानसी चली जाती है। इन्द्र लौट पड़ता है।)

पहले बताकर जाओ।

इन्द्र : क्या ?

लेखक : मानसी कहाँ है ?

इन्द्र : अभी ही तो गई है।

लेखक : यह मानसी नहीं। वह जो हज़ारीबाग में रहती थी। वह कहाँ है ?

इन्द्र : हज़ारीबाग में है।

लेखक : उसे चिट्ठी नहीं लिखते ?

इन्द्र : लिखता हूँ।

लेखक : उससे भेंट होती है ?

इन्द्र : बीच-बीच में होती है।

लेखक : कहाँ ?

इन्द्र : उसी मैदान में—घने पेड़ के नीचे।

लेखक : बातें करते हो ?

इन्द्र : हाँ, करता हूँ ।

लेखक : क्या बातें करते हो ?

इन्द्र : जो सदा से करता आया हूँ—अपनी बातें, उसकी बातें ।

लेखक : वे बातें भी क्या अमल-विमल-कमल की बातों की तरह ही होती हैं ?

(इन्द्र निरुत्तर रहता है ।)

बोलो । इन्द्रजित् !

(इन्द्र तब भी उत्तर नहीं देता—केवल पीछे के उस मैदान में चला जाता है, उसी पेड़ के नीचे । वहाँ हज़ारीबाग वाली मानसी है ।)

मानसी : बोलो ।

इन्द्र : क्या बोलूं ?

मानसी : वही जो कह रहे थे ।

इन्द्र : क्या कह रहा था ?

मानसी : तुम्हारे घर-परिवार की बातें ।

इन्द्र : अरे हाँ, मेरी स्त्री घर की देखभाल करती है । मैं नौकरी करता हूँ । मेरी स्त्री सिनेमा जाती है, मैं उसके साथ जाता हूँ । मेरी स्त्री पीहर जाती है । मैं होटल में खा लेता हूँ । वह लौटकर आ जाती है—मैं बाज़ार करता हूँ ।

मानसी : यह सब क्या कह रहे हो ?

इन्द्र : क्यों, मेरे घर-परिवार की बातें । तुम्हीं तो सुनना चाह रही थीं ।

मानसी : ये सब बातें मैं बिलकुल नहीं सुनना चाह रही थी ।

इन्द्र : तब फिर क्या सुनना चाहती हो ?

मानसी : तुम्हारी बातें ।

इन्द्र : मेरी बातें ? मैं···मैं एक रेल-लाइन पकड़कर चल रहा हूँ—

सीधी रेल-लाइन है। पीछे मुड़कर देखता हूँ तो दूर एक बिन्दु पर लोहे की दोनों लाइनें मिल गई दिखती हैं। सामने देखता हूँ तो वही दूर एक बिन्दु पर दोनों लाइनें मिल गई हैं। मैं जितना ही आगे बढ़ता जाता हूँ, वह बिन्दु उतना ही खिसकता जाता है। जो पीछे है, वही सामने भी। अतीत और भविष्य में कोई अन्तर ही नहीं, जो अतीत में है, वही भविष्य में भी।

मानसी : फिर ?

इन्द्र : सोचता था चाहे पीछे, चाहे सामने से कोई गाड़ी आयेगी।

मानसी : गाड़ी आती तो क्या करते ?

इन्द्र : कूदकर दूर हट जाता या दौड़ने लगता या कौन जाने दब ही जाता। कुछ तो होता। पर नहीं··· वह कैसे होता ! मुझे मालूम हो गया है, उस लाइन पर गाड़ी नहीं चलती। इसीलिए सोचता हूँ···

(चुप हो जाता है।)

मानसी : क्या सोचते हो ?

इन्द्र : सोचता हूँ, अब चलना बन्द कर दूं। चलने से कोई लाभ नहीं है। न होगा तो उसी लाइन पर लेट रहूँगा।

मानसी : (ज़रा रुककर) ऐसा नहीं होता इन्द्र।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : सामने जब पथ है तब चलना ही होगा।

इन्द्र : बहुत तो चल चुका हूँ।

मानसी : और भी चलना होगा, इन्द्र।

इन्द्र : मैं थक गया हूँ।

मानसी : फिर भी चलना होगा।

इन्द्र : क्यों ? क्यों ? क्यों ? यही एक रास्ता है, मैं चला चल रहा हूँ, चला चल रहा हूँ, चला चल रहा हूँ, फिर भी निष्कृति···

मानसी : नहीं···निष्कृति नहीं है इन्द्र।

लेखक : (कविता)

नहीं, नहीं है निष्कृति ।
भीगा मन औ' क्षुधित दोपहर
खंडित दिन ।
निर्जन निद्राहीन रात्रि हैं ।
मैं हूँ
शेष अभी हूँ—जागृत भी हूँ ।
सब है स्मरण
अभी तो जीवन बहुत शेष है ।
(रहा अभी तक जो वह अब भी…
दूर-दूर—बहु दूर-दूर तक रहना
सब तो मेरा ही है और यही मैं ।
फिर भी निष्कृति नहीं ।)

क्लांति दूर हो शांति मिलेगी
इस आशा में दूर-दूर मैं उड़ता जाता
ऊपर उठते, उठकर गिरते
थके पंख पर डाले भार
(क्षण-क्षण के कण-कण हैं बिखरे
और समय की सार्वभौमता
मानों खंडित चूर-चूर हो ।)

मुझे निरन्तर घुमा रहा है
चक्का काम-काज का भारी
गुरु गम्भीर चर्र-चूं करता ।
झूठ बात के खाली गुब्बारे में
भरता फूंक-फूंककर हवा । हाय, पर
फिर भी निष्कृति नहीं ।

(तुमसे है अज्ञात नहीं कुछ।
तुम परिचित हो उन बातों से
सब बातों से
जो निज संग मधुर झंकृति का रव ले आतीं।
और प्रकाश, नशा ले आतीं
स्वच्छ रँगे वस्त्रों के नीचे सड़ा-गला जो उसे ढांकतीं।
तुमसे है अज्ञात नहीं यह सत्य कि)
(जो कुछ है समक्ष
वह जीर्ण पुरातन धागे में गूंथे फूलों का हार
कि जिसके फूल शीघ्र ही झर जाएँगे।)
तुमको है यह ज्ञात
कि मेरे जीवन का अवसान नहीं
मैं हूँ मृत अपने ही।
फिर भी क्यों तुम बात एक ही
बार-बार कहते कि
चलो तुम, और चलो तुम, और चलो···
क्या न मिलेगी निष्कृति अब भी ?

इन्द्र : पर क्यों ?

मानसी : पथ जब है, तब चलना ही होगा।

इन्द्र : क्यों चलना होगा ? पथ के उस पार क्या है ? मैं किस लिए चलूं ?

मानसी : सब किस लिए चलते हैं ?

इन्द्र : सब ?

(सामने की ओर अमल का प्रवेश। लेखक से भेंट होती है।)

लेखक : अरे अमल, कहाँ चले भाई ?

अमल : परीक्षा देने जा रहा हूँ।

लेखक : परीक्षा ? इस उम्र में ?

अमल : इंस्टीच्यूट ऑफ़ वेटरमैनशिप की परीक्षा। पिछले साल भी दी थी पर पास नहीं हो सका। (एक बार और चेष्टा करके देखूं। करेसपांडेन्स कोर्स लिया है।)

लेखक : यह परीक्षा देने से लाभ क्या है ?

अमल : लाभ है भाई, है। इस इंस्टीच्यूट की एसोसियेट मेम्बरशिप मिल जाने से कोई प्रमोशन नहीं रोक सकता। (मैनेजर की पोस्ट तक पहुंचने में कोई असुविधा नहीं होगी) चलूं भाई देर हो जाएगी।

(अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश)

लेखक : अरे विमल ! कहाँ चले ?

विमल : सीमेंट के परमिट के सिलसिले में जा रहा हूँ। (तगादा न करने से तो वहाँ फ़ाइल हिलेगी नहीं।)

लेखक : सीमेंट क्या होगी ?

विमल : मकान बनवा रहा हूँ। (सी० आई० टी० स्कीम में एक जमीन ली है। रिज़र्व दाम है साढ़े छः हजार और नीलाम पर चढ़कर हो गया नौ हज़ार आठ सौ पचास। क्या दाम हो गया है ज़मीन का ? अब बताओ कि मकान बनाने को पैसा कहाँ से लाऊँ ?) गवर्नमेण्ट लोन, इन्श्योरेन्स लोन, एम्प्लाइज़ क्रेडिट लोन सब ले-दे करके भी दो मंज़िल से ज्यादा नहीं बना पा रहा हूँ।

लेखक : तो फिर अभी बनवाया ही क्यों ?

विमल : और क्या करता बोलो ? (आजकल रुपये की कोई कीमत है ?) पर मकान हो तो बुढ़ौती में कम-से-कम रहने का ठौर-ठिकाना तो रहता है। (फिर बाल-बच्चों की बात भी तो सोचनी पड़ती है।) चलूं भाई, देर हो रही है।

(विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश)

लेखक : अरे कमल ! कहाँ चले भाई ?

कमल : जरा श्यामल के ऑफ़िस जा रहा हूँ। उसने किसी एक

फ़ाइनेंसियर का जुगाड़ किया है। देखूँ, यदि समझा सका तो···

लेखक : क्या समझाओगे ?

कमल : एक बड़े अच्छे बिज़नेस की स्कीम है—फुल प्रूफ़ स्कीम है। (इंपोर्ट लायसेंस मिल जाएगा, एसेम्बलिंग में कोई परेशानी नहीं होगी। बड़ा अच्छा मार्केट है। बाज़ार में माल पहुँच ही नहीं पायेगा—सब बुक्ड इन एडवान्स) बस खाली पूँजी के लिए ही रुकी है। (हमने और श्यामल ने मिलकर उधार का इन्तज़ाम किया है, उसमें पूरा नहीं पड़ रहा है) फ़िफ़्टीन परसेन्ट सूद पर भी रुपया नहीं मिल रहा है।

लेखक : तो इस समय यह रोज़गार ही मत उठाओ।

कमल : न करूँ तो खाऊँगा क्या ? नौकरी तो ऐसी ही है। भगवान् की दया से छः बच्चे हैं। (लड़की के टायफायड में एक हज़ार रुपये गल गये। बिचले लड़के को स्कूल में प्रमोशन नहीं मिला—एक साल की फीस का नुकसान हो गया। इस तरह कब तक चलेगा ?) चलूँ देर हो रही है।

(कमल और लेखक दोनों का प्रस्थान)

इन्द्र : और सब। यही और सब हैं। यही अमल-विमल-कमल हैं।

मानसी : फिर भी तो वे चल रहे हैं।

इन्द्र : वे सुखी हैं, मानसी। उनके सामने कुछ है—लक्ष्य है, आशा है, स्वप्न है।

मानसी : तुम्हारे पास नहीं है ?

इन्द्र : ना, कुछ नहीं है।

मानसी : कभी था भी नहीं ?

इन्द्र : था, कभी था क्यों नहीं। मैं खुद था, मैंने मान लिया था कि मुझे कुछ करना है। क्या यह मैं नहीं जानता था पर···पर कुछ विराट् कुछ विशाल।···मैं स्वप्न देखा करता था मानो एक ज्वलंत उल्का की तरह मैं दिशाओं को भेदकर ऊपर आया हूँ—

आकाश के इस कोने से उस कोने तक मैं बस ऊपर ही उठता जा रहा हूँ···तब तक जब तक कि उल्का की अग्नि जलकर निश्शेष न हो जाए। और आकाश में क्षण-भर के लिए आँखों को झुलसा देनेवाली एक ज्वाला मात्र शेष रह जाती है।

मानसी : जलकर भस्म हो गये ?

इन्द्र : कहाँ मानसी। प्रकाश ही नहीं हुआ। आकाश में ज्वाला ही नहीं रही। मैं दिगन्त भेदकर आकाश में ऊपर उठ ही नहीं पाया।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : मुझमें वह क्षमता नहीं है, कभी भी नहीं थी। मैंने केवल क्षमता का स्वप्न देखा। मैं एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति हूँ। जब तक इसे स्वीकार नहीं कर पाया तब तक स्वप्न में था। आज स्वीकार करता हूँ।

मानसी : इन्द्रजित्।

इन्द्र : ना-ना मानसी। मुझे इन्द्रजित् मत कहो, मैं इन्द्रजित् नहीं हूँ। मैं निर्मल हूँ। अमल, विमल, कमल और निर्मल। मैं अमल, विमल, कमल और निर्मल हूँ।

(बोलते-बोलते व्याकुल-सा इन्द्र सामने आ जाता है। लेखक आकर पीछे खड़ा होता है। मानसी बैठी रहती है।

लेखक : इन्द्रजित्।

इन्द्र : आप शायद भूल कर रहे हैं। मेरा नाम निर्मलकुमार राय है।

लेखक : मुझे पहचान नहीं रहे हो, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : कौन ? तुम ? लेखक ?

लेखक : मैं अपना नाटक पूरा नहीं कर पा रहा हूँ, इन्द्र।

इन्द्र : पूरा करके क्या होगा ? उसका अंत नहीं है। उसका आदि-अंत सब एक ही है।

लेखक : फिर भी लिखना तो होगा।

इन्द्र : तुम्हें लिखना है, तुम लिखो। मेरा कुछ भी नहीं है—मैं निमल हूँ।

लेखक : तुम्हारा कुछ नहीं ? प्रमोशन, मकान, बिज़नेस स्कीम कुछ भी नहीं ? फिर तुम निर्मल कैसे होगे ?

इन्द्र : पर···पर मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ।

लेखक : फिर भी तुम निर्मल नहीं हो। मैं भी साधारण व्यक्ति हूँ फिर भी निर्मल नहीं हूँ। हम और तुम निर्मल नहीं हो सकते।

इन्द्र : तब फिर हम लोग किसके सहारे जियेंगे ?

लेखक : पथ के। हम लोगों के लिए केवल पथ है, हम लोग चलेंगे। लिखने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है, फिर भी लिखूंगा। बोलने के लिए तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है फिर भी बोलोगे। मानसी के पास जीने के लिए कोई आधार नहीं है फिर भी वह ज़िन्दा रहेगी। हमलोगों के लिए पथ है, हमलोग चलेंगे।

इन्द्र : देवराज जूपिटर के अभिशाप से सिसिफस की प्रेतात्मा एक बड़ा भारी पत्थर ठेलते-ठेलते पहाड़ की चोटी तक ले जाती है, पर चोटी पर पहुँचते ही तुरन्त पत्थर नीचे लुढ़क जाता है। वह फिर ठेल-ठेल ले जाता है, पत्थर फिर गिर पड़ता है।

लेखक : हमलोग भी अभिशप्त सिसिफस की प्रेतात्मा हैं। हम भी जानते हैं कि वह पत्थर लुढ़क जाएगा। जब ठेल-ठेलकर ऊपर ले जाते हैं तब जानते हैं कि इस मेहनत का कोई अर्थ नहीं है, पहाड़ की उस चोटी का भी कोई मतलब नहीं है।

इन्द्र : इतना सब जानते हुए भी ठेलना होगा ?

लेखक : हाँ, सब-कुछ जानते हुए भी ठेलना होगा। हमें कोई आशा नहीं है क्योंकि भविष्य के बारे में हम जानते हैं। हम लोगों का अतीत और भविष्य एकाकार हो गया है। हम जान चुके हैं कि जो हमारे पीछे था, वही हमारे सामने भी है।

इन्द्र : फिर भी ज़िन्दा रहना होगा ?

लेखक : हाँ, फिर भी जिन्दा रहना होगा। फिर भी चलते जाना होगा। हमलोगों के लिए तीर्थ नहीं है, केवल तीर्थयात्रा।

(मानसी आकर लेखक और इन्द्रजित् के बीच में खड़ी हो गई है। तीनों की दृष्टि सामने है, तनिक ऊपर। लगता है मानो प्रेक्षागृह की दीवार पारकर, हवा और आकाश का क्षेत्र पार करके कहीं बहुत दूर चली गई है वहाँ, जहाँ पथ की दोनों रेखाएँ एक विन्दु पर मिल गई हैं। चारों ओर अंधकार में एक प्रकाश-पुंज उन्हें आलोकित किये है। दूर से स्वर सुनाई पड़ता है।)

इसीलिए तो इस पथ का मैं
अन्त नहीं पाता हूँ।
नहीं कहीं आश्वास कि
यात्रा के पूरी होने पर कोई
देवलोक सम्मुख होगा
या कि स्नेह-स्पर्श से अपने
पथ-श्रम कोई दूर करेगा।
इसीलिए यह यात्रा अब है
अर्थहीन
उद्देश्यहीन-सी।

तो भी सोच करूँ क्यों ?
हो, ऐसी ही होनी है तो !

इच्छा केवल व्यर्थ प्रश्न सत्र पड़े रहें
उत अतल गर्त में।
शोक सभी मैं जाऊँ भूल।

जीवन के उस स्वर्ण-प्रात में
मुक्त-हृदय निर्द्वन्द्व भाव से

दीक्षा ली थी पदयात्रा की
सतत तीर्थयात्रा करने की।

जीवन की संध्या में पहुँचा
मन मेरा यह भूल न जाए
दीक्षा के उस मूल मंत्र को—
तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं, है केवल पथ ही
इसी तीर्थ पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

●:●

54671
8·7·76